"इस कहानी के लिखने का उद्देश्य यह है कि हम अच्छी तरह देखे कि हमारी उन्नति कहाँ तक हुई थी और आज हमारा पतन किस हद तक हुआ है। अपनी वर्तमान स्थिति को जानने के लिए भूतकाल की स्थिति जानना आवश्यक है। × × × ग्राम-सगठन की समस्या देश के सामने है। उसकी पूर्ति मे इस कहानी से सहायता मिल सकती है।"

लेखक

सस्ता साहित्य मण्डल

[सर्वोदय साहित्य माला : सतहत्तरवाँ ग्रन्थ]

लोक साहित्य माला : पहली पुस्तक

[१ : ७७]

हमारे

गाँवों की कहानी

लेखक

स्वर्गीय रामदास गौड़, एम० ए०

सस्ता साहित्य मण्डल,

दिल्ली

प्रकाशक—
मार्तण्ड उपाध्याय,
मन्त्री, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

अप्रैल, १९३८ : २०००
मई १९३९ : २०००

मूल्य
आठ आना

मुद्रक—
श्रीपतराय,
सरस्वती प्रेस,
बनारस कैण्ट।

प्रकाशक की ओर से

हमें इस बात की बहुत खुशी है कि 'मण्डल' से प्रकाशित होनेवाली नई 'लोक साहित्य माला' की शुरुआत हम स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ की इस पुस्तक से कर रहे हैं।

इस पुस्तक के पीछे एक लम्बा इतिहास है। सन् १९२९-३० के दिनो मे स्व० गौड़जी से 'मण्डल' ने 'ग्राम-सुधार और सगठन' के विषय पर एक ग्रन्थ लिखाया था। सन् १९३०-३१ मे गौड़जी ने उसे लिखकर अपने मित्र और 'मण्डल' के सचालक-मण्डल के प्रमुख सदस्य श्री महावीरप्रसाद पोद्दार को देखने के लिए कलकत्ते भेज दिया। ग्रन्थ बहुत बडा होगया था और उनकी तथा 'मण्डल' की यह राय हुई कि गौड़जी इसको कुछ छोटा करदे और इसे देखने के लिए गुजरात विद्यापीठ के आचार्य श्री काका कालेलकर और महामात्र श्री नरहरि परीख के देखने को भेजदे। इसके मुताबिक गौड़जी ने इस ग्रथ को काका सा० को, जबकि वह काशी-विद्यापीठ के समावर्तन-संस्कार के निमित्त काशी गये थे, दे दिया। काका सा० और नरहरिभाई ने ग्रन्थ को देखा-न देखा कि सन् १९३२ का आन्दोलन शुरू होगया, गुजरात-विद्यापीठ पर सरकार का क़ब्जा होगया और काका सा० और नरहरिभाई जेल चले गये। सन् १९३३ मे जब विद्यापीठ पर से प्रतिबध उठा तब 'मण्डल' के मत्री ने उस ग्रन्थ के बारे मे वहाँ पूछताछ की। लेकिन मालूम हुआ कि ग्रन्थ कही खोगया है। इतने बड़े और इतनी मेहनत से लिखे गये ग्रथ के खो जाने से हम सबको बड़ा दुःख हुआ।

लेकिन सन् १९३४ मे जब मण्डल दिल्ली आ चुका था, तब उत्साही राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता श्री बलवीरसिंह हमें मिले और गौडजी की

इस पुस्तक के बारे मे पूछने लगे कि वह प्रकाशित हुई है या नहीं ? तब हमने उसके खो जाने की सारी कहानी उनको सुनाई। इसपर उन्होंने कहा कि "इसकी एक नक़ल तो मेरे पास है, अगर आप चाहें तो मैं आपको दे दूं।" हमें यह सुन आनन्द हुआ और आश्चर्य भी। पूछने पर उन्होंने बताया कि जब यह पुस्तक श्री महावीरप्रसाद पोद्दार के पास कलकत्ता गई थी तब वह उनके साथ शुद्ध खादी भण्डार मे काम करते थे। वहाँ इस पुस्तक को उन्होने पढा। और पढने पर उनको वह इतनी अच्छी लगी कि रात-रात भर जागकर चुपके से उसकी नकल करली। इसका न तो पोद्दारजी को पता था और न गौडजी को ही।

श्री बलवीरसिहजी ने ग्रन्थ मण्डल को देदिया। 'मण्डल' ने फिर गौड़जी को भेजा कि इसको अगर कुछ घटादे और अद्यवत् (Up to date) बनादे तो इसे प्रकाशित किया जाय। लेकिन वह दूसरे ग्रंथो के लेखन आदि मे इतने व्यस्त रहे कि इसका संपादन न कर सके और अत मे पिछले वर्ष भगवान् के घर जा रहे। उसके बाद यह ग्रथ फिर गौडजी के मित्र श्री कृष्णचन्द्रजी (सबजज, काशी) की मारफत श्री पोद्दारजी के पास गया। उन्होंने इसे शुरू से अत तक पढा और उन्होंने मण्डल को सलाह दी कि इसको अब जैसा-का-तैसा ही प्रकाशित करना चाहिए। इसी निश्चय के फल स्वरूप इस ग्रन्थ का यह पहला खण्ड आपके हाथ में है। और दूसरा खण्ड 'मण्डल' की 'सर्वोदय साहित्यमाला' (बड़ी माला) से शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

इस प्रकार श्री बलवीरसिहजी के परिश्रम से गौडजी का यह ग्रन्थ बच गया इसके लिए वह हमारे और पाठकों के बहुत धन्यवाद के पात्र हैं।

यह इसका सारा इतिहास है। 'मण्डल' ने इस ग्रंथ पर स्व० गौड़जी के परिवार को रॉयल्टी देना तय किया है। पहले तो यह ग्रथ ही इतना

उपयोगी और उत्तम है कि प्रत्येक ग्रामसेवक और लोकसेवक के लिए इसको अपने पास अपने मार्ग-दर्शन के लिए रखना बहुत जरूरी है। दूसरे जितना ही इसका अधिक प्रचार होगा उतनी ही स्व० गौडजी के परिवार वालों को आर्थिक सहायता होगी और होती रहेगी। इसलिए आशा है, प्रत्येक ग्रामसेवक और लोकसेवक इसे अवश्य खरीदेगा और लाभ उठावेगा।

इस माला में इसी आकार-प्रकार, छपाई और मूल्य वाला सर्वसाधारण के लिए ज्ञानवर्धक और चरित्र को ऊँचा उठानेवाला राष्ट्रीय साहित्य निकलेगा। इसकी पूरी योजना इस पुस्तक के अन्त मे दी गई है। हम इस माला को सब तरह से सम्पूर्ण और उत्कृष्ट बनाना चाहते हैं। लेकिन यह सब हिन्दी भाषा के उदार पाठकों, लेखकों और भारत के लोकनेताओं के प्रोत्साहन और मार्ग-दर्शन पर निर्भर करता है। आशा है, पाठकवर्ग ज्यादा-से-ज्यादा तादाद मे इसको खरीदकर और इसका प्रचार करके तथा लेखकवर्ग इसके लिए पुस्तके लिखकर और लोकनेता इस दिशा मे हमारा मार्ग-दर्शन करके इस काम को पूर्ण करने में हमारी सहायता करने की कृपा करेंगे।

आज इसका दूसरा संस्करण पाठकों की सेवा मे प्रस्तुत करते हमें हर्ष है और हम भविष्य मे उनसे और अधिक सहयोग की आकांक्षा रखते हैं।

—मन्त्री

सस्ता साहित्य मण्डल

भूमिका

आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान् विशेषतः भारतवर्ष के इतिहास के सम्बन्ध में मुख्य धारणाओं के साथ अपने सभी विचारों को सुसंगत करने की कोशिश करते हैं। उनकी एक धारणा यह है कि पाश्चात्य इतिहास की तरह यहाँ का इतिहास भी विकासवाद के अनुरूप होना चाहिए। दूसरी धारणा यह है कि मानव सभ्यता का इतिहास इतना पुराना नहीं है जितना हिन्दू बताते हैं। तीसरी धारणा यह है कि आर्य लोग कहीं विदेश से भारत में किसी भूतकाल में आये थे। पहली धारणा में यह दुर्बलता है कि विकास-विज्ञान उत्तरोत्तर वर्धमान शास्त्र है। उसके आधार पर इतिहास की कोई स्थिर इमारत सभी देशों और कालों के लिए सुभीते से नहीं खड़ी की जा सकती। दूसरी धारणा भी पहली के ही आधार पर है और विज्ञान गत पचास बरसों के भीतर सृष्टि और सभ्यता के भूतकाल की सीमा को बराबर बढ़ाता आया है अतः इस धारणा में भी स्थिरता का अभाव है। तीसरी धारणा कुछ विशेष कल्पनाओं के आधार पर है जिन पर भी विद्वानो का मतभेद है। हमारा प्राचीन साहित्य हमारे निकट उसका तनिक भी समर्थन नहीं करता। सुतराँ मैं तीसरी धारणा को निराधार मानता हूँ।

पाठकों के सामने भारतीय गाँवों के इतिहास के जो ये पृष्ठ मैं रख रहा हूँ, उनमें मैंने उपर्युक्त तीनों धारणाओं की जानबूझ कर उपेक्षा की है। साधारण पाठक भी इस झगड़े में नहीं पड़ना चाहेंगे कि सतयुग पाँच हज़ार बरस पहले हुआ या बीस लाख बरस पहले। या यह कि सतयुग में यदि वह सृष्टिकाल के पास था, मनुष्य को कपड़े बनाने की कला आती

चाहिए या नहीं? अथवा यह कि यहाँ के गाँवों को आर्यों ने बाहर से आकर बसाया या वे भारत में पहले से ही बसे हुए थे। हमारे इतिहास का आधार हमारा साहित्य है और उसमें भी यह विषय सर्वसम्मत है कि वेदों से अधिक पुराना संसार में कोई साहित्य नहीं है। पुराने-से-पुराने साहित्य के आधार पर प्राचीनतम गाँवों का इतिहास अवलम्बित है, फिर चाहे उसे पाँच हज़ार बरस हुए हों, चाहे पाँच लाख। हमारे गाँवों की जब से आबादी है हम उसी समय से अपने वर्णन का आरम्भ करते हैं। फिर चाहे वे गाँव इस भूतल पर किसी देश के क्यों न हों वे गाँव हमारे ही थे किसी और जाति के नहीं।

इस कहानी के लिखने का उद्देश्य यह है कि हम अच्छी तरह देखें कि हमारी उन्नति कहाँतक हुई थी और आज हमारा पतन किस हद तक हुआ है। अपनी वर्त्तमान स्थिति को अच्छी तरह समझने के लिए भूतकाल की स्थिति का जानना आवश्यक है, क्योंकि वर्त्तमानकाल भूतकाल का पुत्र है। साथ ही भावी उन्नति और उत्थान के लिए ठीक मार्ग निश्चय करने में भूतकाल का इतिहास बड़ा सहायक होता है। आज हमारे गाँवों के लिए जीवन और मरण का प्रश्न खड़ा है। इसे हल करने के लिए भी हमें अपने पूर्वकाल का सिंहावलोकन करना आवश्यक है। ग्राम संगठन की समस्या देश के सामने है। उसकी पूर्त्ति में इस कहानी से सहायता मिल सकती है। इस कहानी की हमारे ग्राम संगठन के काम में कुछ भी उपयोगिता सिद्ध हुई तो मैंने, इस पोथी के संकलन में, जो कुछ परिश्रम किया है उसे सार्थक समझूँगा।

बड़ी पियरी, काशी

रामदास गौड़

विषय-सूची

हमारे गाँवों की कहानी

हमारे

गाँवों की कहानी

: १ :

सतजुगी गाँव

१. गाँव किसे कहते हैं ?

तथा शूद्रजनप्राया सुसमृद्धकृपीवला ।
क्षेत्रोपयोग-भू-मध्ये वसतिर्ग्रामसंज्ञिका ॥

—मार्कण्डेय पुराण ।

गाँव किसे कहते है ? आज भारत देश मे कोई ऐसी बात पूछ बैठे तो लोग उसे पागल कहेगे। बडे से बड़े शहर मे रहनेवाला बड़ा आदमी भी जिसे किसी बात की कमी नहीं है, कम-से-कम हवा खाने के लिए गाँव की ओर ज़रूर जाता है। इसलिए कोई ऐसा नही है जो गाँव के लिए पूछे कि किसे कहते है। तो भी भारी-भारी पण्डितो ने यह बताया है कि गाँव किसे कहते है। गाँव उसी बस्ती का नाम है जिसमे मेहनत मजूरी करनेवाले, और सब जरूरत की वस्तुओ से रॅजे-पुञ्जे खेतिहर रहते हो और जिसके चारो ओर खेती करने के लायक धरती हो। ऊपर लिखे श्लोक के लिखनेवाले ने गाँव के रूप का एक नक़शा खींचा है। भारत खेतो का देश है। अन्न और कपड़ा इन्ही खेतो से मिलते है। ससार की अच्छी से अच्छी चीजे, भोग-विलास की सामग्री तक लगभग सभी इन्हीं खेतो की उपज है। इन्ही खेतो की बदौलत किसान सुखी और निश्चिन्त रह सकता है। इन खेतो

पर मेहनत मजूरी खूब जी लगाकर की जाती है, तभी सब मनचाहा सामान मिल सकता है। इसलिए गाँव मे मजूर और किसान इन दोनो का होना जरूरी है। मजूर जब अपने खेत मे काम करता होता है, तब किसान कहलाता है। किसान जब मजूरी लेकर दूसरे का काम करता है तब मजूर कहलाता है। गाँव के रहनेवाले सभी मजूर और किसान है। एक कुम्हार जब औरो को बरतन बनाकर देता है, एक तेली जब औरो के लिए तेल पेलता है, एक कोरी जब औरो के लिए कपड़े बुनता है, और एक चमार जब औरो के लिए जूते बनाता है, तब वह मजूर का काम करता है। परन्तु जब कुम्हार, तेली, कोरी, चमार, बनिया, कायस्थ, क्षत्रिय, ब्राह्मण अपने लिए अपने खेती-बारी का काम करते है, तब सब के सब किसान है। गाँव मे आपस के और नाते भी होते है, पर मजूर और किसान का आपस का नाता सबमे बराबर है। आदमी सभी बराबर हैं। सब अपना-अपना काम करते है।

आजकल भी हम गाँवो मे देखते है तो थोड़ी-बहुत ऐसी ही बात पाई जाती है। पण्डितो ने जो गाँव का नकशा खींचा है वह बिलकुल मिट नहीं गया है। आज भी हम गाँवो मे जाकर देखते है तो मजूरो और किसानो को पाते है। हाँ, उन्हे सुखी नहीं पाते। बहुत से हड्डी की ठठरी देख पड़ते है। बहुत-से रोगी आलसी और बेकार भी है। आधे से अधिक ऐसे है जिन्हे दिन-रात मे एक बार भी भरपेट रूखी रोटी नही मिलती। खेतो मे अनाज पैदा होता है, पर वह न जाने कहाँ चला जाता है। वे अन्न उपजाते है, पर औरो के लिए। वे चोटी का पसीना एडी तक बहाते है और काम के पीछे मर मिटते है; पर औरो के लिए। धूप, आँधी, पानी, ओले, पाला, बरफ सबका कष्ट झेलकर सेवा करते है पर उनकी सेवा करते है जो उन्हें लात मारते है: उपकार के बदले उलटे अपकार करते हैं। उनकी यह घोर

दरिद्रता—जिसको देखकर रोयें खड़े हो जाते हैं, जी दहल जाता है—उन अपकारियों पर कोई प्रभाव नहीं डालती। वे कहते हैं कि ये तो सदा के दरिद्री हैं, पशु हैं और हमारे सुख के लिए बनाये गए हैं। उनकी कल्पना मे इन गाँवों के सुख के दिन आते ही नहीं। आजकल की पच्छाही कल-पुरजो की सभ्यता से जिनकी आँखे चौंधियां गई हैं, पच्छाँह की माया मे जिनकी बुद्धि चकरा गई हैं, वे सोचते हैं कि मजूरों और किसानो की दशा पहले कभी अच्छी रही हो, ऐसा नहीं हो सकता और आज तो इनकी दशा सुधारने के लिए बडे-बडे कल कारखाने खुलने चाहिए। क्या इनके विचार ठीक हैं? क्या मजूर और किसान पहले अधिक सुखी नहीं थे? क्या पहले भी आज की तरह खेती से इनका गुजारा नहीं होता था? इन बातों पर विचार करने के लिए हमे प्राचीनकाल की सैर करनी चाहिए।

२. सतजुग का आरंभ

सतजुग की चर्चा हमने बहुत सुनी है, पर हम नहीं जानते कि सतजुग किसे कहते हैं। पण्डित लोग बताते हैं कि वह समय बहुत-बहुत दिन हुए बीत गया। लाखों बरस की बात है। अनेक पढ़े-लिखे कहते हैं कि कई लाख नहीं तो कई हजार बरस तो जरूर बीत गए हैं। चाहे जितना समय बीता हो वे लोग जिसे वेद का युग कहते हैं उसीको सतजुग भी कहा जाता है। पण्डितों का यह भी कहना है कि भारत के लोग आर्य हैं, और आर्य का सीधा-साधा अर्थ किसान है।[1] आर्य किसान को कहते हैं। इस बात की गवाही वेदों से भी

१ रमेशचन्द्र दत्त रचित अंग्रेजी के "प्रचीन भारत मे सभ्यता का इतिहास", पृष्ठ ३५।

मिलती है।[१] राजा पृथु की कथा, सीताजी का जन्म, अकाल पड़ जाने पर बड़े-बड़े ऋषियों की तपस्या, यज्ञ, पूजा आदि कथाओं से पुराण भरे पड़े हैं। कृष्ण और हलधर किसानों ही के नाम है। खेती गोपालन और व्यापार वैश्यों का खास काम बताया गया है। किसान बिना गऊ पाले खेती का काम चला नहीं सकता। और खेती में उपजा हुआ अन्न जब गाँव के खर्च से बचेगा तो उसे अपने गाँव से बाहर बेचना ही पड़ेगा। इसलिए जो काम वैश्य जाति का बताया गया है वह किसान का ही काम है। वेदों में 'विश्' आर्य प्रजा के लिए आया है। इसीसे वैश्य बना। इसलिए वैश्य भी किसान ही को कहते है।[२]

१. यवंवृकेणाश्विना वपन्तेष दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरुज्योतिश्चक्रथुरार्याय॥

ऋक् १। ११७। २१

हे अश्विनी कुमारो! हल से जुते खेत मे यवादि धान्य बुवाते हुए तथा मेघ बरसाते हुए खेत के नाश करनेवाले दस्यु को बकुर से (बज्र से) मारते हुए तुम दोनो ने आर्य वैश्य के लिए विस्तीर्ण सूर्य नाम की ज्योति बनाई है।

ओमासश्चर्षणी[१]धृतो विश्वे देवास आगत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम्॥१॥

ऋक् १। ३। ७

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः[१]। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि॥२॥

ऋक् १। ४। ६

(१) चर्षणि, (२) कृष्टि—ये दोनो शब्द मनुष्य वाचक हैं। हे देवताओ! धनादि देनेवाले आप लोग हवि देनेवाले यजमान के घर पर पधारो॥१॥

हे शत्रु नाशक इन्द्र! तेरी कृपा से शत्रु भी हमें अच्छा बतलावे, फिर हम इन्द्र से प्राप्त सुख मे रहे॥२॥

२. पुरुष सूक्त के सिवाय संहिताओ मे और कहीं 'वैश्य' शब्द नहीं

हमारी दुनिया सतजुग से ही शुरू हुई है और खेती का शुरू भी सतजुग में ही मानना पड़ेगा। इसलिए हम सहज में ही समझ सकते है कि सतजुग मे खेती का काम बहुत होता रहा होगा। साधारण लोग खेती या मजूरी ही करते रहे होगे। प्रोफेसर सन्तोषकुमार दास अपनी अंग्रेज़ी की "प्राचीन भारत का साम्पत्तिक इतिहास" नाम की पुस्तक मे पृष्ठ ६ पर लिखते है कि "धरती के चार विभाग होते थे। (१) वास्तु (२) कृषियोग्य भूमि (३) गोचर भूमि (४) जंगल। वास्तुभूमि का मालिक किसान होता था। · · वास्तव में जितने युद्ध हुआ करते थे गऊ या खेतो के हरण के लिए हुआ करते थे। जीत का भाग जीतने वालो में बँट जाता था।" लोग गाँव मे अपने परिवार के साथ रहते थे और खेतो के मालिक की हैसियत से खेती करते थे। बाप मर जाता था तब बेटो मे जायदाद बटती थी। गोचर भूमि और जगल पर सबका अधिकार था। वेदो मे इन अधिकारो के दायभाग की भी चर्चा है। इस पोथी मे यह भी लिखा है कि "प्रोफ़ेसर कीथ (Keith) और दूसरे विद्वान् कहते हैं कि इस जुग में शहर होते ही न थे। शहर का होना सिद्ध करने के लिए जो मन्त्र कहा जाता है उसका अर्थ यह विद्वान् यह लगाते हैं कि शरदऋतु में बाढ़ आने पर इन मिट्टी के

आया। 'विश्' शब्द का बराबर प्रयोग है जिसका अर्थ 'साधारण प्रजा' लिया गया है। इसलिए यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि 'वैश्य' साधारण प्रजा के अधिकाश समुदाय का नाम होगा। यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि देश के भरण-पोषण के लिए सबसे अधिक सख्या किसानों ही की होनी चाहिए। ब्राह्मणो और क्षत्रियो की आवश्यकतानुसार अत्यन्त कम शूद्रों अर्थात् मजूरो की सख्या लगभग किसानों अथवा वैश्यो के बराबर होगी।

पुरों में किसान लोग शरण लेते थे। यह 'पु' एक प्रकार के बांध का नाम है।"[1] जो हो; तो इसमें सन्देह नहीं मालूम होता कि शहर थे भी तो बहुत कम रहे होंगे। गाँवों की ही गिनती सबसे ज्यादा होगी।

मन्त्रों से यह भी पता चलता है कि हल से खेत जोते जाते थे और जौ, गेहूँ, धान, मूंग आदि अनाज और गन्ने की पैदावार बहुतायत से होती थी।[2] लोग गाय, बैल, घोड़े, भेड, बकरी रखते थे और चराने को ले जाया करते थे। समय-समय पर खेती के सम्बन्ध से नई उपज पर, फसल खड़ी होने पर, कटने पर, बोने के समय इत्यादि अवसरों पर किसान यज्ञ करता था और बड़ी अच्छी दक्षिणा देता था। ब्राह्मण के दाहिनी ओर गाय होती थी, जो यज्ञ के अन्त में उसे दी जाती थी। दक्षिणा नाम इसीसे पड़ा है। आजकल पुरोहित जो पद-पद पर गऊ-दान माँगता है वह इस पुराने रिवाज के अनुसार ही

१ शतमश्मन्मयीना पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे॥

ऋग्वेद म० ४ सू० म० २०

तथा प्रो० सन्तोषकुमार दास की पुस्तक पृष्ठ १०-११

इन्द्र ने दिवोदास नामक यजमान को पत्थर के बने हुए सौ 'पुरों' को दिया।

२. युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति।

अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु॥

ऋग्वेद म० ८ सू० २२ म० ४

हे अश्विनी कुमारो! तुम्हारे रथ का एक चक्र द्युलोक की परिक्रमा करता है, दूसरा तुम दोनो के समीप से जाता है। हे उदकरक्षक! कुमारो! तुम्हारी अच्छी बुद्धि हमारी तरफ धनादि देने के लिए उसी प्रकार आवे, जिस प्रकार नव-प्रसूता गौ दूध पिलाने के लिए बच्चे के पास जाती है।

है। किसान कितना धनवान होता था, इसका पता उसकी दक्षिणा से लगता है। किसान की आमदनी खेती से, पशुओं से और बागों और जंगलों की उपज से अधिक होती थी। पर केवल अनाज के ही कारोबार में लोग फँसे नहीं रहते थे। वेदों में सूत, रेशम, ऊन और छाल आदि के बने हुए बारीक और उत्तम कपड़ों का अनेक प्रसंगों में वर्णन हुआ है। इसलिए यह बात बिलकुल जाहिर है कि किसान लोगों में कताई और बुनाई का काम बहुत फैला हुआ था। बचे हुए समय में ये लोग कताई, बुनाई की कला के अभ्यास से लगे रहते थे।[1] ये ऊन का रंग उड़ा देते थे और कपड़ों को सुन्दर-सुन्दर

१ नाह तन्तुं विजानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः।
कस्य स्वित् पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा॥

म० ६। सू० ९। म० २

न मैं तन्तु को और न ओतु को ही जानता हूँ और न इन दोनों से बनने वाले कपड़े को जानता हूँ। किसका सुपुत्र इन वक्तव्य-व्याख्यातव्य ज्ञापनीय बातों को सूर्य से नीचे लोक में रहने वाला पुरुष बतला सकता है अर्थात् कोई नहीं। यदि कोई इन बातों का पता चला सकता है तो सिर्फ वैश्वानर से ही। यह वैश्वानर की स्तुति है।

स इत्तन्तुं स विजानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन् परो अन्येन पश्यन्॥

म० ६। सू० ९। म० ३

इस प्रकार तन्तु आदि का जानना अत्यन्त कठिन है परन्तु यदि कोई जानता है तो वह वैश्वानर ही जानता है—और वही व्याख्या करता है, जो कि सूर्य, अग्नि आदि रूपों से द्युलोक और भूलोकादि में स्थित है।

स मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।

रंगों मे रंगते थे। सिले हुए कपड़े और अच्छे प्रकार की पोशाक पहनते थे। दूध, घी, तेल, मसाले और औषधियाँ काम मे लाते थे; शहद इकट्ठा करते थे, शक्कर बनाते थे। इसमे तनिक भी सन्देह नहीं है कि उनके यहाँ तेल और गन्ने पेलने के कोल्हू थे, खाडसाल थीं, करघे थे, चरखे थे। खेत की सिंचाई के लिए कुएँ थे जिनसे रहँट से पानी निकाला जाता था। नाले और नहरो से भी सिंचाई होती थी। कभी-कभी सूखा भी पड़ जाता था और लोग अकाल का

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्त मे अस्य रोदसी १ । १०५ । ८

मुझे कूप की भीतें तकलीफ देती हैं जिस प्रकार सौतें एक पति को दुःख देती हैं तथा जुलाहे को चूहे जो कि आ आकर के तन्तु काट जाते हैं, जिनपर माँड लगा रहता है। हे इन्द्र ! तेरे स्तोता मुझको आधियाँ बहुत ही सताती हैं।

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथ न धीर. स्वपा अतक्षम् ॥

५ । २९ । १५

हे बलवत्तर ! इन्द्र ! हमने तेरी नवीन-नवीन स्तुति तैयार की हैं जिस प्रकार अच्छे अच्छे वस्त्रो से रथ तैयार किया जाता है, आप उन्हे स्वीकार कर हमें धनवान् बनाइए।

उच्चथ्ये वपुषि यः स्वराडुत वायो घृतस्नाः।
अश्वेषित रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिद नु तत् ॥ ८ । ४६ । २८

इस स्तुत्य शरीर में जो स्वाराट् (अन्न) विद्यमान है वह अश्व गवे, कुत्ते इन सबको अभीष्ट है वह अन्न हमे दे। और वह अन्न सामने टेरी रूप में विद्यमान है।

भी मुकाबला करते थे। उनके बर्तन ताँबे, पीतल, फूल कांसे के होते थे। अमीरों के घर सोने और चाँदी के बर्तन बरते जाते थे। वे गाडी, रथ और नाव भी रखते थे और जूते पहनते थे। अच्छे-अच्छे कच्चे, पक्के मकान बनाते थे, चित्रकारी करते थे, मूर्तियाँ बनाते

गावो न यूथमुपयन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः।

८। ४६। ३०

मुझे गौएँ तथा बधिये बैल प्राप्त हो रहे हैं।

अधयच्चार थे गणे शतमुष्ट्रों अचिक्रदत्।

अध श्वित्रेषु विंशतिशता।

८। ४६। ३१

जंगलों में झुण्ड रूप में चरने वाले ऊँट हमें प्राप्त हों। और श्वेत-रंग वाली गौओं के सौ बीसे प्राप्त हों। (इस प्रकार के इस मण्डल में बहुत मन्त्र हैं)।

आविपणाया. पति. शुचायाश्च शुचस्य च।

वासो वायोऽवीना मावासाँसि मर्मृजत्॥

ऋक् १०। २६। ६

अपने लिए पाली गई बकरी और बकरों का पालक सूर्य हमारे लिए भेड़ों की ऊन के बने हुए वस्त्र (जिनको धोबियो ने धोया है) प्रकाश और उष्णता से शुद्ध करता है।

त्वमग्ने प्रयत दक्षिण नर वर्मेव स्यूत परि पासि विश्वतः।

स्वादु क्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाज यजते सोपमा दिवः॥

ऋक् १। ३१। १५

हे अग्ने! तू प्रयतदक्षिण पुरुष की उस प्रकार रक्षा करता है जैसे ताने, बाने, तुरी, वेमा आदि से बनाया हुआ कवच उससे ढके हुए मनुष्य की रक्षा करता है। जो सुखकारी यजमान जीवयजन सहित यज्ञ

थे, बच्चों को पढ़ाते-लिखाते थे और अच्छे-अच्छे व्यजन वना कर खाते थे। इन सब बातो से यह ज़ाहिर होता है कि गॉव मे किसान ही रहते थे और वे खेती के सिवाय और भी काम किया करते थे। ब्राह्मण पुरोहिती करता था और खेती भी करता था। क्षत्रिय रक्षा

को करता है वह स्वर्ग की उपमा होता है। अर्थात् जिस प्रकार स्वर्ग प्रत्येक को सुख देता है उस ही तरह वह भी ऋत्विगादिको को सुख देने वाला कहलाने से स्वर्ग है।

सयह्वयोऽवनीर्गोष्ववर्वा जुहोति प्रधन्यासु सस्त्रिः।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वासईरतेघृतंवा. ॥

ऋक् १० । ९९ । ४

वह घोड़ा (इन्दे) मेघो में जाता है, पृथ्वी पर चलता है। और वह बिना पैर के जहाँ चलते हैं वहाँ, जहाँ रथ से नहीं चलते वहाँ तथा नदियों में भी चलता है।

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँ इव।
क्रतुं नः सोम जीवसे विवो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे ॥

ऋक् १० । २५ । ४

हे सोम ! हमारी स्तुतियाँ रहट की डोलचियो के समान इकट्ठी ही चलती हैं जिस प्रकार वे कूप में इकट्ठी जाती हैं। तुम भी हमारे लिए यज्ञ को उस प्रकार धारण करो जिस प्रकार तुम्हारे लिए अध्वर्यु चमस को धारण करता है।

वावर्त येषा राया युक्तैषा हिरण्ययी।
नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता ॥

ऋक् १० । ९३ । १३

जिनके धन के कारण हमारी स्तुति बार बार हिरण्यालकार के समान चित्त को प्रसन्न कर रही है। जिस प्रकार पुरुषो की सेना सग्राम में और

करता था और खेती भी करता था। बनिया व्यापार भी करता और खेती भी करता था। मजूर मजूरी भी करता था और खेती भी। कुम्हार, तेली, भडभूँजे, चमार, कोरी, ठठेरा, लुहार, बढ़ई, धींवर, ग्वाले,

---

रहट की घटिका यन्त्रमाला कूए में देखने पर चित्त को प्रसन्न करती है।

प्रीणीताश्वान् हित जयाथ स्वस्तिवाह रथमित्कृणुध्वम्।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमसत्रकोश सिञ्चता नृपाणम्॥

१० । १०१ । ७

हे ऋत्विजो! तुम घोडों को घासदाना आदि खिला-पिलाकर मोटा ताजा रक्खो और फिर खेत वगैरा बोओ। और चयन नामक रथ को स्वास्तिवाहक बनाओ। बैलो के पीने के लिए चौबच्चे लकडी, पत्थर आदि के गहरे बनाओ तथा ऐसे हौज़ भी बनाओ जिनसे मनुष्य जल पी सकें।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगान् वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया॥

ऋक् १० । १०१ । ४

मेधावी पुरुप हल जोड़ (त) ते हैं, जूओ को अलग-अलग बनाते हैं, जिसमे हमें सुख प्राप्त हो।

इस प्रकार इस मण्डल मे तथा अन्य मण्डलों में भी इस प्रकार ऋग्वेद मे वास्तु विद्या का विस्तृत वर्णन मिलता है।

यत्ते वासः परिधान या नीवि कृणुषे त्वम्।
शिव ते तन्वे तत् कृण्म· संस्पर्शद्रूक्ष्णमस्तु ते॥

अथर्व० ८ । २ । १६

हे बालक! तेरा जो ओढ़ने व पहिनने का वस्त्र है यह तेरे लिए सुखकारी हो—और हम उस वस्त्र को मुलायम बनाते हैं। इत्यादि।

इसी प्रकार १० । १०१ । ३ मे ऋग्वेद मे सातो अनाजो के बोने की भी वेद मे आज्ञा मिलती है। इत्यादि॥

धुनिये, सुनार, धोबी, रङ्गरेज़ दर्ज़ी, माली आदि सभी कारबार के लोग गाँवो मे रहते थे और अपने कारोबार के साथ-साथ खेती ज़रूर करते थे। श्रम-विभाग के अनुसार जातियाँ बन गई थी। ये जातियाँ धीरे-धीरे वशानुगत हो गई।

सतजुग मे गाँवो की इस व्यवस्था को देखकर यह कौन कह सकता है कि आजकल की तरह उस समय भी मजूर और किसान भूखों मरते थे। उस समय की चर्चा मे भुक्खडो का और दुर्भिक्ष पीड़ितो का वर्णन नहीं है। अधिकांश मनुष्य अपने-अपने अधिकार पर बने रहते थे। दूसरो का हक छीनने की चाल कम थी। धर्म्म की वुद्धि अधिक थी। हरेक गाँव अपने लिए स्वतंत्र था। पाप बुद्धि कम होने से चोर डाकू या और सत्वापहारियो का डर न था। यह सतजुग का आरम्भ था।

३. राजकर और लगान की रीति

सतयुग के आरम्भ से बहुत काल तक किसी ऊपरी हकूमत या शासन की ज़रूरत न पड़ी होगी, क्योंकि प्रजा मे अपने-अपने कर्तव्य पूरे करने का भाव था, और धर्म-बुद्धि थी। पराये धन का लोभ-लालच प्राय: तभी अधिक होता है, जब अपने पास किसी वस्तु की कमी होती है। मनुष्यो की बस्ती घनी न थी, सारी बस्ती पडी थी। इसलिए लोग ज़रूरत से ज्यादा धनी और सुखी थे। यह भी कहना अनुचित न होगा कि इन्द्रियो के सुख की सामग्री न ज्यादा तैयार हुई थी, और न उसका उनको ज्ञान था। अज्ञान के कारण भी लोभ उनको नहीं सताता था। ईसाइयो के सतजुग मे भी आदम ने ज़बतक ज्ञान के पेड़ का फल नहीं खाया था, तबतक उसे मालूम न था, कि

मैं नंगा हूँ, और नंगा रहना बुरी बात है। ज्ञान का फल खाते ही उसे इञ्जीर के पेड़ को नंगा करके अपना तन ढकना पड़ा। बाग में ज्ञान और जीवन के पेड़ थे, जिनका फल खाना उसके लिए वर्जित था। शैतान की दम-पट्टी में आकर उसमें यह भारी भूल होगई। मालूम होता है कि ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती गई त्यों-त्यों तैयार की हुई धरती मनुष्य के लिए घटती गई। लोभ रूपी शैतान ने आदमी को बहकाया। वह परमात्मा की आज्ञा को भूल गया।[१] उसे यह ज्ञान हुआ कि मेरे पास सम्पत्ति कम है, और पड़ौसी के पास ज्यादा। या अगर मेरे पास पड़ौसी से ज्यादा सम्पत्ति हो जाती तो मैं अधिक सुखी हो जाता। लोभ ने दूसरे की चीज़ हर लेने की ओर उसके मन को झुकाया। धीरे-धीरे धर्म-भाव का लोप होने लगा स्वार्थ और पाप ने अपनी जड़ जमाई। कोई राजा या हाकिम न था जो बल के प्रयोग में बाधा डालता।

"राखै सोई जेहि ते बनै, जेहि बल होइ सो लेइ।"

यही नियम चलने लगा "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली बात चरितार्थ होने लगी, किसी तरह का राज न होने से उस समय प्रजा एक दूसरे का उसी तरह नाश करने लगी थी, जैसे पानी में बड़ी-बड़ी मछलियाँ छोटी-छोटी मछलियों को खाने लगती है। इस तरह बलवानों और निर्बलों का झगड़ा जब समाज में उथल-पुथल मचाने

१. ईशावास्यमिदं सर्व्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्। यजु० ४०। १।

यह सब कुछ, जो कुछ कि चलायमान् संसार है, वह परमात्मा के रहने की जगह है, परमात्मा सब में व्यापक है। उसके प्रसाद की तरह जो कुछ तुम्हें मिले, उसका भोग करो, किसी और के धन का लालच मत करो।

लगा, उस समय जिन लोगो मे थोड़ी धर्म-बुद्धि थी, वे समाज की इस गड़बड़ को मिटाने के लिए लड़नेवालो को समझाने-बुझाने लगे, और यह कोशिश करने लगे कि गई हुई धर्म-बुद्धि लौट आवे। इसमे वे सफल न हुए। भले लोगो ने इन पशु-बल वालो से बचने के लिए, यह निश्चय किया कि जो लोग वचन के शूर है, लबार है, सब पर ज़बर्दस्ती किया करते है, पराई स्त्री और पराये धन को हर लेते है, उन सबका हम लोग त्याग करेंगे। असहयोग इस तरह सतजुग मे ही आरम्भ हुआ था।

जान पड़ता है, कि असहयोग बहुत काल तक नहीं चला। जो ज़बर्दस्त थे, किसी का दवाव नही मानते थे, व्यभिचारी थे, और दूसरो का धन हर लेते थे, उनकी गिनती शायद बहुत बढ़ गई थी, और इतनी बढ़ गई थी[१] कि उनसे थोड़ी गिनतीवाले धर्मात्माओ के

---

१ अराजका· प्रजाः पूर्व, विनेशुरिति न. श्रुतम्।

—महाभारत, शान्तिपर्व।

वाक्शूरो दडपरुषो यश्च स्यात्पारजायिकः
य· परस्वमथाददद्यात्त्याज्या नस्तादृशा इति।
तास्तथा समय कृत्वा समये नावतस्थिरे॥

म॰ भा॰ शा॰ प॰

बिभेमि कर्मणः पापाद्राज्य हि भृशदुस्तरम्।
विशेषतो मनुष्येषु मिथ्यावृत्तेषु नित्यदा।
तमब्रुवन्प्रजा मा भैः कर्त्तॄनेनो गमिष्यति।
पशूनामधिपञ्चाशद्धिरण्यस्य तथैव च॥
धान्यस्य दशमं भागं दास्याम. कोषवर्द्धनम्।
यं च धर्मं चरिष्यन्ति प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः॥
चतुर्थं त्वस्य धर्मस्य त्वत्संस्थं वै भविष्यति।

त्याग का उनपर कोई असर न पड़ा। अच्छो ने मिलकर प्रजापति से शिकायत की। इस पर पितामह ब्रह्मा ने एक बहुत बड़े धर्मशास्त्र की रचना की, जो क्रम से बहुत छोटे रूप मे धर्म-भीरू मनुष्यो को मिला। इसका नाम दण्ड-नीति रक्खा गया। परन्तु इतने से काम न चला। दण्ड कौन दे? तब शासन करनेवाले की जरूरत हुई। लाचार हो लोग प्रजापति के पास गये; परन्तु प्रजापति अधिकार के लोभी न थे। उन्होने लोगो को मनु के पास भेजा। मनु बोले, राजा का काम बड़ा कठिन है, और पाप से भरा है। जो लोग झूठ के व्यवहार में लगे रहते है उन पर, और खासकर झूठे मनुष्यो पर, शासन करने से मै डरता हूँ। मनुष्य समाज के सामने यह बड़ी कठिनाई आ खड़ी हुई। उसने मनु को प्रसन्न करने के लिए उन्हे ये वचन दिये—"आप पाप के लिए न डरिए। पाप करनेवाला उसके फल को भुगत लेगा। आपका कोप बढ़ाने के लिए हम पशु और सोने का पचासवाँ और अनाज का दसवाँ भाग देते रहेंगे। आपसे रक्षा पाकर हम लोग जो भले कर्म करेंगे, उसका चौथाई फल आपको मिलेगा। उस पुण्य से सुखी होकर आप हमारी रक्षा उसी तरह कीजिए जैसे इन्द्र देवताओ की रक्षा करता है।"

जान पड़ता है भगवान् मनु ने राज-भार लेने पर जो बन्दोबस्त किया उसका आधार यही इकरारनामा था। बन्दोबस्त करने के बदले और रक्षा कराई के वेतन मे मनुष्यो को भूमि पर कर देना पडता है। मनु का धर्मराज था। जिन लोगो ने जगल काटकर मेहनत करके जितनी धरती को खेत बनाया था, उतनी धरती उनकी सम्पत्ति

तेन धर्मेण महता सुखं लब्धेन भावित.।
पाह्यस्मान् सर्वतो राजन् देवानिव शतक्रतुः।

होगई। बहुतों के पास जरूरत से ज्यादा धरती थी। बहुतों ने यह चाहा कि हमें धरती को बनाने की मेहनत न करनी पड़े और खेत मिल जाँय। बहुतों के पास इतने खेत थे, कि वे सबको काम में नहीं ला सकते थे! इस तरह लेने और देनेवाले दोनों मौजूद होगये। खेत कुछ काल के लिए या सदा के लिए किराये पर दिये जाने लगे। इसी का नाम लगान पड़ा। राजा का महसूल जमीन के मालिक को देना पड़ता था। लगान धरती का मालिक लेता था। इस तरह धरती का मालिक खेतीवाले से जो लगान लेता था, वह इतना होता था कि अनाज का दसवाँ भाग राजा को देने के बाद भी उसे कुछ आय बच जाती थी। खेती करनेवाले को छठे भाग तक लगान में दे डालना पड़ता था। कुछ भी हो, धरती राजा की नहीं थी। प्रजा की थी। राजा रक्षा करता था। जो भूमि-कर उसे मिलता था वह राजा की तनख्वाह थी। शुक्र नीति में भी ऐसा लिखा है।

जिन राजाओं ने धर्म के तत्त्व को ठीक तरह पर न समझा और अपने को धरती और प्रजा का मालिक समझकर मनमानी करने लगे, दीनों और दरिद्रों पर अन्याय करने लगे तब प्रजा का नाश होने लगा और उन राजाओं का अपने ही कर्तव से विनाश होगया। राजा वेन अपनी जबर्दस्तियों के कारण ऋषियों के हाथ मारा गया। राजा पृथु गद्दी पर बैठाया गया। प्रजा की उचित रक्षा करने और धरती से अन्न-धन निकालकर प्रजा को सुखी रखने से पृथु का राज ऐसा मशहूर होगया कि इसीसे सारी धरती का नाम पृथ्वी पड़ गया।

दण्ड-नीति को चलानेवाला राजा होने लगा। वह प्रजापति की ही जगह था। इसलिए ससार की प्रजा उसकी प्रजा होगई। वह भूप या भूपाल या नरपाल कहलाया, क्योंकि वह धरती और किसान

की रक्षा करता था। उसे तनख्वाह मे राज-कर मिलता था, जिसे वह प्रजा की धरोहर समझता था और रक्षा के काम मे लगाता था। उसे अपने लिए बहुत थोड़े अंश की जरूरत होती थी। जमींदारी, रैयतवारी, लगान, राजा, राज-प्रबन्ध सब कुछ तभी से चल पड़े।

: २ :

सतजुग के बाद के गाँव

१. त्रेता और द्वापर

सतजुग के बाद के समय को विद्वान लोग त्रेता और द्वापर युग कहते है। उसीको प्राय: पच्छाही रीति से विचार करनेवाले ब्राह्मण-युग कहते है। इस युग मे भी जितनी बाते सतयुग मे होती थीं उतनी सभी बातें पाई जाती है। युग बदल गया, बहुत काल बीत गया, लोग वेदो को भूल गये, उनका अर्थ समझना अत्यंत कठिन हो गया। परन्तु लोग धातुओ का निकालना न भूले, सोने-चाँदी के सिक्के बनाना न भूले, अनाज उपजाना, पशु पालना, और व्यापार करना बराबर पहले की तरह जारी था। भगवान् रामचन्द्रजी के राज मे, जिसे लिखनेवाले तो १०-११ हजार बरस तक का बतलाते हैं, पर जो अवश्य बहुत काल तक रहा होगा, कभी अकाल नहीं पड़ा था और जब एक ब्राह्मण का लड़का जवान ही मर गया तो वह उसकी लाश भगवान रामचन्द्रजी के दरबार मे लाया और राजसिंहासन से विचार कराना चाहा कि लड़का क्यो मरा। क्योकि उस समय यही समझा जाता था कि अल्पमृत्यु, अकालमृत्यु और दुर्भिक्ष या प्रजा की दरिद्रता ये सब कष्ट जो प्रजा को कभी पहुँचते है, तो इसका दोषी या अपराधी राजा होता है। और यह बात तो बिलकुल साफ ही है कि जब सब तरह से रक्षा करना राजा का ही

काम था, तब प्रजा मे रोग, दरिद्रता, अल्पमृत्यु तो तभी होगी जब उसकी रक्षा पूरे तौर पर न होगी और राजा अपने धर्म का पालन न करेगा और कर वसूल करता जायगा। इससे यह पता चलता है कि रामराज्य मे प्रजा सब तरह से सुखी थी। अर्थात् किसान सुखी, समृद्ध और एक दूसरे की सहायता करनेवाले थे। सतजुग की तरह अब भी खेती मे बहुत बडा और भारी हल काम मे आता था। उसका फाल बहुत तेज़ और पैना होता था और मूठ चिकना होता था। एक-एक हल मे चौबीस-चौबीस तक बैल जोते जाते थे। खेत की जैसी उत्तम प्रकार की सिंचाई होती थी उसी तरह खाद भी देना जरूरी था, और भाँति-भाँति के अनाज उपजाये जाते थे। आज जितने अनाज उपजाये जाते है, प्राय॰ सभी उस समय भी होते थे।[1]

१. लागल पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु ।
उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद्रथवाहन पीवरीं च प्रफर्व्यम् ॥
अथर्व ३।१७।३

तेज़ फालवाला हल, सोम यज्ञ के साधन सब अन्नो का उत्पादक होने से सुखकर है। वह बैल, भेड़ आदि को गमन-समर्थ, मोटा-ताजा रथादिवाहन समर्थ बनावे।

शुनासीरे ह स्म में जुषेथाम् ।
यद्दिवि चक्रथु पयस्तेने मामुपसिञ्चतम् ॥ अथर्व ३।१७।७

हे शुनासीर देवो! जो मेरे खेत मे पैदा हुआ है उसे सेवन करो। और जो आकाश मे जल है उससेइस खेत को सींचो।

"त्रतुरौदुम्बरो भवत्यौदुम्बर. स्रुव औदुम्बरश्चमस औदुम्बर इध्मा आदुम्बर्यो उपमन्थिन्यौ। दशग्रम्याणि धान्यानि भवन्ति—व्रीहियवाः

रामायण से पता चलता है कि खेती बड़ी भारी कला समझी जाती थी, क्योंकि उस समय वेदों के साथ-साथ शिक्षा का मुख्य विषय खेती और व्यापार था। श्रीरामचन्द्रजी भरतजी से पूछते हैं कि "तुम किसानों और गोपालों के साथ अच्छा बर्ताव रखते हो या नहीं।" खेती इतने जोरों से होती थी कि अयोध्याजी किसानों से भरी हुई थी। धान की उपज बहुतायत से दिखाई गई है। राजा इस बात का गर्व करता है कि उसका राज्य अन्न-धन से भरा हुआ है। गाँवों के वर्णनों में यह कहा गया है कि वे चारों ओर जुती हुई धरती से घिरे हैं।[१]

हर गाँव में ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र और हर पेशेवाले जिनकी जीवन में सबसे ज्यादा जरूरत पड़ती है, जैसे नाई, धोबी, दर्जी, कहार, चमार, बढ़ई, लुहार, सुनार, ग्वाले, गडरिये आदि होते थे। गाँव का सरदार या मुखिया भी कोई होता था, और पञ्चायतों से हर गाँव अपना स्वाधीन बन्दोबस्त किया करता था। रक्षा के

तिलमाषा अणुप्रियङ्गवो गोधूमाश्च मसूराश्च खल्वाश्च खलकुलाश्चेति। बृहदारण्यकोपनिषत् अ० ६। ब्रा. ३। म. १३

"दस तरह के ग्रामीण अन्न होते हैं—धान, (चावल) जौ, तिल, उड़द, अणु, (साँवा-कगंनी, मसूर, खल्व, कुलथा, गेहूँ।"

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियंगवश्च मे ऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।१८।१२।

इस मन्त्र का अर्थ स्पष्ट है।

१. अयोध्याकाड सर्ग ६८; बालकाड सर्ग ५; अयोध्याकाड, ३।१४; अयोध्याकाड सर्ग ६२।

लिए राजा को उसका उचित कर उगाहकर मुखिया दिया करता था, और उसके बदले राजा बाहरी बैरियो से गाँवो की रक्षा करता था, फिर चाहे वह बैरी मनुष्य हो, कृमि, कीट, पतंग हो, रोग, दोष अकाश, सूखा, पानी की बाढ़, आग, टीड़ी आदि कुछ भी हो। राजा दसवें भाग से लेकर छठे भाग तक कर लेकर भी राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकता था, तो उसे प्रजा का चौथाई पाप लगता था[1]।

किसान को त्रेता और द्वापर मे खेती की आजकल की सी साधारण विपत्तियाँ झेलनी पड़ती थीं। चूहे, घूस, छछून्दरें बीज खा जाती थीं, चिड़ियाँ आदि अकुरो को नष्ट कर देते थे। अत्यन्त सूखा या बहुत पानी से फसले बरबाद हो जाती थी। अच्छी फसलो के लिए उस समय भी भाँति-भाँति के उपाय करने पड़ते थे। परन्तु खेती को जब कभी हानि पहुँचने की सम्भावना होती थी राजा रक्षा का उपाय करने का जिम्मेदार था। और जब कभी दुर्भिक्ष पड़ता था राजा के ही पाप से पड़ता था। राजा रोमपाद के राज मे उन्हीं के पाप से काल पड़ा बताया जाता है।[2] राजा का कर्त्तव्य था कि दुर्भिक्ष निवारण के सारे उपाय जाने और करे।

१ आदायबलिषड्भाग यो राष्ट्र नाभिरक्षति।
प्रतिगृह्णाति तत्पाप चतुर्थांशेन भूमिपः॥ —महाभारत

२ बालकाड, सर्ग १, अयोध्याकाड, सर्ग १०० ; बालकाड, सर्ग ९। ७

"एतस्मिन्नेव कालेतु रोमपादः प्रतापवान्॥
अगेषु प्रथितो राजा भविष्यति महाबलः।
तस्य व्यतिक्रमाद्राज्ञो भविष्यति- सुदारुणा।
अनावृष्टिः सुघोरा वै सर्वलोकभयावहा॥ इत्यादि।
व्यतिक्रमात्तुराजोचितधर्मविलोपनादिति तिलकव्याख्या।

इस युग मे भी गोशालायें बहुत उत्तम प्रकार से रक्खी जाती थीं। इस युग मे घोष पल्लियाँ[1] अर्थात् ग्वालो के गॉव के गॉव थे और ग्वाले बहुत सुखी और धनी थे और दूध, मक्खन, घी आदि के लिए प्रसिद्ध थे। द्वापर के अन्त मे नन्दगॉव, गोकुल, बरसाना और वृन्दावन तक गोपालो के गॉव थे और कस जैसे अत्याचारी और लुटेरे के राज से भी मथुरा के पास इन गॉवो मे दूध, दही की नदी बहती थी। और नन्द और वृषभान जैसे बडे अमीर ग्वाले रहते थे। इस समय मे भी कुम्हार, लुहार, ग्वाले, ज्योतिषी, बढ़ई, धीवर, नाई, धोबी, बिनकार, सुराकार (कलवार), इषुकार (तीर बनानेवाले), चमडा सिझानेवाले, घोडे के रोज़गारी, चित्रकार, पत्थर गढ़नेवाले, मूर्ति बनानेवाले, रथ बनानेवाले, टोकरी बनानेवाले, रस्सी बनानेवाले, रङ्गरेज, सुनार, धातु निकालनेवाले नियारिये, सूखी मछली बेचनेवाले, सुईकार, जौहरी, अस्त्रकार, नकली दॉत बनानेवाले, दॉत के वैद्य, इतर बेचनेवाले, माली, थवई, जूते बनानेवाले, धनुष बनानेवाले, औषध बनानेवाले और रासायनिक आदि की चर्चा इस समय के ग्रन्थो मे आई है।[2]

१ तैत्तिरीय ब्राह्मण, काण्ड १। प्र० ४। अ० ९। ख० २। से मालूम होता है कि गायें तीन बार चरने को भेजी जाती थीं और उनकी अच्छी सेवा होती थी। तथाहि—

"त्रिषु कालेषु पशवः तृणभक्षणार्थ सञ्चरन्ति।
तत्तन्मध्यकातो तु रोमन्थ कुर्वन्तो वर्त्तन्ते। इति।" अर्थ स्पष्ट है।

२ शुक्ल यजुर्वेद अध्याय १६ और ३०, रामायण अयोध्या काड सर्ग १००, बालकाड, सर्ग ५। हम वेद के मन्त्रो का उदाहरण नहीं देते क्यो कि सारा अध्याय ही उदाहरणीय है। अतः पाठक किसी भी मन्त्र को

कपड़े की बिनाई की कला भी अपनी हद को पहुँच चुकी थी। सोने और चाँदी के काम के कपडे, ज़री के काम के पीताम्बर आदि भी बनते थे। जिनमे जगह-जगह पर रत्न और नगीने टके हुए थे। ब्राह्मण लोग कौशेय वस्त्र पहनते थे और तपस्वी छाल के बने कपड़े पहनते थे। रँगाई भी अच्छी होती थी। रुई के मैल को उड़ाने के लिए इस युग मे एक यन्त्र काम मे आता था। ऊन के रेशम के बड़े अच्छे-अच्छे प्रकार के महीन और रगीन और चमकीले कपडे बनते और बरते जाते थे।[1]

उठाकर देख सकते हैं। तथा बालकाण्ड का सारा सर्ग ही यहाँ पठन योग्य है।

१ "कौशेयानि च वस्त्राणि यावत्तुष्यति वै द्विज." इत्यादि

अयोध्याकाड अ० ३२। श्लोक १६।

"भूषणानि महार्हाणि, वरवस्त्राणि यानि च"

अयोध्याकाण्ड ३०। ४४

सुन्दर काण्ड का नवाँ सर्ग भी द्रष्टव्य है। पाठक देख सकते हैं।

"सा हर्षोत्फुल्लनयना पाण्डुरक्षौमवासिनीम्" इत्यादि

अयोध्याकाड ७। ७

"जातरूपमयैर्मुख्यैरंगदै. कुण्डलैः शुभै ।
सहेमसूत्रैर्मणिभी केयूरैर्वलयैरपि। इत्यादि

अयोध्याकाड ३२। ५

"दान्तकाञ्चनचित्राङ्गैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्न महाधनै·। इत्यादि

सुन्दरकाड १०। २

"रौक्मेषु च विशालेषु भाजनेष्वप्यभक्षितान्।
ददर्श कपिशार्दूलो मयूरान् कुक्कुटांस्तथा।

सुन्दरकाड ११। १५

ऐसा जान पड़ता है कि पेशेवालों की पंचायतें भी उस समय अवश्य थीं। जो पंचायत का सभापति होता 'श्रेष्ठ' कहलाता था।[१]

खेती के काम मे स्त्रियों का भी भाग था। खेती का काम इतना पवित्र समझा जाता था कि उसके लिए यज्ञ करने मे स्त्री पुरुष दोनो शामिल होते थे।[२] जहाँ पुरुष अन्न उपजाता था वहाँ किसान की स्त्री अन्न के काम को पूरा करती थी। उसके स्वादिष्ट भोजन तैयार करती थी। अन्नपूर्णा देवी का आदर्श पालन करती थी।

भारत के जंगलो से लाक्षा आदि रंगने की सामग्री किसान लोग इकट्ठी करके काम मे लाते थे और इसका व्यापार इतना बढ़ा-चढ़ा

"ता रत्नवसनोपेता गोष्ठागारावतसिकाम्।
यन्त्रागारस्तनीमृद्धा प्रमदामिव भूषिताम्।

सुन्दरकाड ३। १८

१. अथर्व वेद, १।९।३ शतपथ ब्राह्मण, १३।७।१।१; ऐतरेय ब्राह्मण, १३।३९।२, ४।२५।८-९।; ७।१८।८. छान्दोग्य उपनिषद्, ५।२।६; कौषीतकी उपनिषद ४।२०, २।६, ४।१५।, बृहदारण्यकोपनिषद १।४।१२।

२. येनेन्द्राय समभरः पयास्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः।
तेन त्वमग्रे इहवर्धयेय सजातानां श्रैष्ठ्य आधेह्येनम्॥ अथर्व १।९।३

हे अग्ने! जिस मन्त्र से तू देवताओं को उत्तम अन्न प्राप्त कराता है उसी मन्त्र से इस पुरुष को 'श्रेष्ठ' पद का अधिकारी बना।

"श्रैष्ठो राजाधिपतिः समाज्यैष्ठ्यं श्रैष्ठ्यं राज्यमाधिपत्य गमयत्वहमेवेद सर्वमसानीति" : छान्दोग्य अध्याय ५ खण्ड ६०। मन्त्र का अर्थ स्पष्ट है।

"श्रैष्ठ्य स्वाराज्यं पर्येति" ४।२०, "भूतानि श्रैष्ठ्याय युज्यन्ते" २।६ "इद श्रैष्ठ्याय यम्यते" ४।१५ कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषत्॥ अर्थ स्पष्ट है।

"श्रेयास हिसित्वेति" १।४।१२ बृहदारण्यकोपनिषत्।

था कि भारत से बाहर के देशो मे भी रंग की सामग्री बिकने को जाया करती थी।

गॉव मे अन्न, पशु, आदि से बदलकर और जरूरत की चीजें लेने की चाल तब भी थी जैसी कि आज अन्न मे बदल कर लेने की चाल बाकी है। बदलने की यह रीति उस समय इसलिए प्रचलित न थी कि उस समय सिक्को का चलन न था। सिक्को का तो उस समय सतजुग से प्रचार चला आया था। हिरण्यपिण्ड निष्क, शतमान, सुवर्ण इत्यादि सोने के सिक्के थे। कृष्णाल एक छोटा सिक्का था. जिसमे एक रत्ती सोना होता था।[1] बात यह है कि उस समय गौएँ सस्ती थीं और उनके पालने का खर्च बहुत नहीं था। गौओ की संतान सहज ही बढ़ती थी और उत्तम से उत्तम पोपक भोजन घी, दूध, दही कौड़ियो के मोल था। अनाज देश मे ही खर्च होता था। रेल की कांचियो मे लद-लदकर करॉची के बंदरगाह से बाहर नहीं जाता था। इस तरह किसान लोग धनी और सुखी थे और व्यवहार-व्यापार मे सच्ची अदला-बदली से काम लेते थे। उस समय धन और सम्पत्ति का सच्चा अर्थ समझा जाता था। पर जो भारी-भारी व्यापारी या साहु महाजन थे वे सोने, चॉदी, मोती, मूगे और रत्नो को इकट्ठा करते थे। राजा और राज कर्मचारी भी अमीर होते थे, जिनके पास सोने, चांदी और रत्नो के सामान बहुत होते थे। परंतु ऐसे लोग भारी संख्या मे न थे। भारी सख्या किसानो की ही थी।

१ शतपथ ब्राह्मण ५।४।३, २४, २६ . ५।५।१६ १२।७।२।१३।, १३।२।३।२, तैत्तिरीय ब्राह्मण १।७।८२ और १२।७।७ और १७।६।२.

सोना, चाँदी, रत्न, टक, वंग, सीसा, लोहा, ताँबा, रथ घोड़े, गाय, पशु, नाव, घर, उपजाऊ खेत, दास-दासी इत्यादि इस युग में धन, सम्पत्ति की वस्तुयें समझी जाती थीं जहाँ कहीं ब्राह्मणों के दान पाने की चर्चा है वहाँ से पता लगता है कि उस समय धन कितना था और किस तरह बँट जाता था। राजा जनक ने साधारण दान में एक-एक बार हज़ार-हज़ार गौएँ, बीस-बीस हज़ार अशर्फियाँ विद्वान् ब्राह्मणों को दी है। एक जगह वर्णन है कि एक भक्त ने ८५ हज़ार सफेद घोड़े, दस हज़ार हाथी और अस्सी हज़ार गहनों से सजी दासियाँ यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण को दीं।[१]

इसी युग के सिलसिले में महाभारत का समय भी आता है। यह द्वापर का अंत और कलियुग के आरंभ में पड़ता है। महाभारत के समय में हिन्दुस्तान के जो राज्य थे उन सबकी राज्य-व्यवस्थाओं में खेती, व्यापार और उद्योग के बढ़ाने की ओर सरकार की पूरी दृष्टि थी। इस विषय के लिए एक अलग राजविभाग था। सभा पर्व में नारद ने और बातों के अलावा राजा युधिष्ठिर से यह भी पूछा है कि रोज़गार में सब लोगों के अच्छी तरह से लग जाने पर लोगों का सुख बढ़ता है। इसलिए तेरे राज में रोज़गारवाले विभाग में अच्छे लोग रक्खे गये हैं न ?" इस अवसर पर रोज़गार के अर्थ में वार्ता शब्द आया है। वार्ता या वृत्ति में वैश्यों या किसानों के सभी धन्धे समझे जाते हैं। श्रीमद्भागवद्गीता में, जो महाभारत का ही एक अंश

१ छान्दोग्योपनिषद ४।१७।७, ५।१३।१७ और १९, ७।२।४। शतपथ ब्राह्मण ८।४८ तैत्तरीय उपनिषद १।५।१२ बृहदारण्यकोपनिषद ३।३।१।१; शतपथ ब्राह्मण २।६।३।९; ४।१।११, ८।३।४।६, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१२।५, ११, १२

है, भगवान् कृष्ण ने कहा है कि खेती, बनिज और गोपालन ये तीनो धन्धे स्वभाव से ही वैश्यो के लिए है। खेती मे वह सब कारबार शामिल है जो खेती की उपज से सम्बन्ध रखते है। और गोरक्षा मे पशुपालन का सारा कारबार शामिल है। इसी तरह बनिज मे सब तरह का लेनदेन और साहूकारी शामिल है इन सबका नाम उस समय वार्ता था और आजकल अर्थशास्त्र है।[1]

२. द्वापर का अन्त

महाभारत काल मे व्यावहार और उद्योग-धन्धो पर लिखते हुए श्री० चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपने अपूर्व ग्रथ 'महाभारत-मीमासा' मे खेती और बागीचे के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है वह हिन्दी मे ही है इसलिए यहाँ हम उसे ज्यो का त्यो दे देते हैं:—

"महाभारत काल में "आजकल की तरह लोगों का मुख्य धन्धा खेती ही था और आजकल इस धन्धे का जितना उत्कर्ष हो चुका है, कम-से-कम उतना तो महाभारत काल में भी हो चुका था। आजकल जितने प्रकार के अनाज उत्पन्न किये जाते हैं वे सब उस समय भी उत्पन्न किये जाते थे। खेती की रीति आजकल की तरह थी। वर्षा के अभाव के समय बडे-बड़े तालाब बनाकर लोगों को पानी देना सरकार का आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था। नारद ने युधिष्ठिर से प्रश्न

१. कच्चित्स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनै.।
वार्ताया सश्रिते नून लोकोयं सुखमेधते ॥

—मराभारत, सभापर्व

उस समय मे विद्या के चार विभाग थे। त्रयी, दडनीति, वार्ता और आन्वीक्षिकी। त्रयी, वेद को कहते थे। दड नीति, धर्मशास्त्र था। और आन्वीक्षिकी, मोक्ष शास्त्र या वेदात था। वार्ता, अर्थशास्त्र था।

किया है कि 'तेरे राज्य में खेती वर्षा पर तो अवलंबित नहीं है न? तूने अपने राज्य में योग्य स्थानों पर तालाब बनाये हैं न?' यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पानी दिये हुए खेतों की फ़सल विशेष महत्त्व की होती थी। उस जमाने में ऊख, नीलि (नील) और अन्य वनस्पतियों के रंगों की पैदावार भी सींचे हुए खेतों में की जाती थी। (बाहर के इतिहासों से अनुमान होता है कि उस समय अफ़ीम की उत्पत्ति और खेती नहीं होती रही होगी।) उस समय बड़े-बड़े पेड़ों के बाग़ीचे लगाने की ओर विशेष प्रवृत्ति थी और खासकर ऐसे बाग़ीचों में आम के पेड़ लगाये जाते थे। जान पड़ता है कि उस समय थोड़े अर्थात् पाँच वर्षों के समय में आम्र वृक्ष में फल लगा लेने की कला मालूम थी। यह उदाहरण एक स्थान पर द्रोण पर्व में दिया गया है। 'फल लगे हुए पाँच वर्ष के आम के बाग़ीचे को जैसे भग्न करें' इस उपमा से आजकल के छोटे-छोटे कलमी आम के बाग़ीचों की कल्पना होती है। यह स्वाभाविक बात है कि महाभारत में खेती के सम्बन्ध में थोड़ा ही उल्लेख हुआ है। इसके आधार पर जो बातें मालूम हो सकती हैं वे ऊपर दी गई हैं। × × × किसानों को सरकार की ओर से बीज मिलता था, और चार महीनों की जीविका के लिए अनाज उसे मिलता था, जिसे आवश्यकता होती थी। किसानों को सरकार अथवा साहूकार से जो ऋण दिया जाता था उसका ब्याज फ़ी सैकड़े एक रुपये से अधिक नहीं होता था। खेती के बाद दूसरा महत्त्व का धंधा गोरक्षा का था। जंगलों में गाय चराने के खुले साधन रहने के कारण यह धंधा ख़ूब चलता था। चारण लोगों को बैलों की बड़ी आवश्यकता होती थी, क्योंकि उस ज़माने में माल लाने

१. चूतारामो यथाभग्नः पञ्चवर्षः फलोपगः।

लेजाने का सब काम बैलों से होता था। गाय के दूध-दही की भी बड़ी आवश्यकता रहती थी। इसके सिवा गाय के सम्बन्ध में पूज्य बुद्धि रहने के कारण सब लोग उन्हें अपने घर में भी अवश्य पालते थे। जब विराट राजा के पास सहदेव तंतिपाल नामक ग्वाला बनकर गया था, तब उसने अपने ज्ञान का वर्णन किया था।[1] उससे मालूम होता है कि महाभारत-काल में जानवरों के बारे में बहुत कुछ ज्ञान रहा होगा। अजाविक अर्थात् बकरों भेड़ों का भी बड़ा प्रतिपालन होता था। "जाबालि" शब्द "अजापाल" से बना। उस समय हाथी और घोड़ों के सम्बन्ध की विद्या को भी लोग अच्छी तरह जानते थे। जब नकुल विराट राजा के पास ग्रंथिक नाम का चाबुक-सवार बनकर गया था तब उसने अपने ज्ञान का वर्णन किया था।[2] उसने कहा 'मैं घोड़ों का लक्षण, उन्हें सिखलाना, बुरे घोड़ों का दोष दूर करना और रोगी घोड़ों का दवा करना जानता हूँ।" महाभारत में अश्वशास्त्र अर्थात् शालिहोत्र का उल्लेख है। अश्व और गज के सम्बन्ध में महाभारत-काल में कोई ग्रंथ अवश्य रहा होगा। नारद का प्रश्न है कि 'तू गजसूत्र, अश्वसूत्र, रथसूत्र इत्यादि का अभ्यास करता है न?" मालूम होता है कि प्राचीन काल में बैल, घोड़े और हाथी के सम्बन्ध में बहुत अभ्यास हो चुका था और उनकी रोगचिकित्सा का भी ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था।[3]

१ क्षिप्रं च गावो बहुला भवति। न तासु रोगो भवतीह कश्चन॥

२ अश्वाना प्रकृति वेद्मि विनयं चापि सर्वशः।
दुष्टाना प्रतिपत्ति च कृत्स्न च विचिकित्सितम्॥

३. त्रि.प्रस्रुतमद. शुष्मी षष्ठिवर्षी मतगराट्॥४॥
म-भा. सभापर्व, अ० १५१

महाभारत-मीमांसा मे ऊपर की लिखी बातो से यह ज़ाहिर है कि द्वापर के अंत और कलियुग के आरम्भवाले समय मे गॉव के रहनेवाले किसान सुखी और धनी थे। उनकी दशा आजकल की-सी न थी। उनके पास अन्न-धन की बहुतायत थी। वे अपना उपजाया खाते और अपना बनाया पहनते थे। बकरा, भेड़ आग और धरती बेचने की चीज़े नहीं थीं।[१] जान पड़ता है कि उस समय तक खेतो के रेहन और बय करने की प्रथा नहीं चली थी। इस रीति का आरम्भ चन्द्रगुप्त के समय से जान पड़ता है। उस समय भी यह अधिकार सबको नहीं मिला था। मुसलमानो के समय मे रेहन और बय करने की रीति ज़ोरो से चल पड़ी, और संवत् १८४४ मे तो कम्पनी सरकार ने नियम बना दिया, कि कानूनगो के यहाँ रजिस्ट्री कराके ज़मींदार अपनी ज़मीन रेहन या बय करा सकता है।

साठवें वर्ष मे हाथी का पूर्ण विकास अर्थात् यौवन होता है और उस समय उनके तीन स्थानों मे मद टपकता है। कानों के पीछे, गंडस्थलो से और गुह्य देश मे। महाभारत के जमाने की यह जानकारी महत्वपूर्ण है। इससे विदित होता है कि उस समय हाथी के सम्बन्ध का ज्ञान कितना पूर्ण था।

१. अजोऽग्निर्वरुणो मेष. सूर्य्योऽश्वः पृथिवी विराट्।
धेनुर्यज्ञश्च सोमश्च न विक्रेया. कथञ्चन। —महाभारत

: ३ :

कलजुग का प्रवेश

१. बौद्धकाल

कलजुग के आरम्भ के हज़ार-डेढ़ हज़ार बरस तक वही दशा समझनी चाहिये जो महाभारत के आधार पर मीमांसा मे दी गई है। आज से लगभग ढाई हज़ार बरस पहले भगवान बुद्ध का समय था। गाँव के सम्बन्ध मे बुद्धमत के ग्रंथो मे से बहुत-सी बाते निकाली जा सकती है। उनसे यह पता चलता है कि भारत का समाज उस काल मे भी देहाती ही था। किसान लोग अपने अपने खेत के मालिक थे और गाँव के किसानो की एक जाति-सी बनी हुई थी। अलगायी हुई भारी-भारी रियासते, ज़मींदारियाँ या ताल्लुके न थे। एक जातक मे लिखा है कि जब राजा विदेह ने ससार छोड़कर सन्यास ले लिया तो उन्होंने सात योजनो की अपनी राजधानी मिथिला छोड़ी और सोलह हज़ार गाँव का अपना राज छोड़ा। इससे पता चलता है कि सोलह हज़ार गाँववाले राज्य के भीतर मिथिला नाम का एक ही शहर था। उस समय गाँवो के मुकाबले शहरो की सख्या इतनी थोड़ी थी कि अगर हम एक लाख गाँवो के पीछे सात शहरो का औसत मानले और यह भी मान लें कि आज कल की तरह सारे भारत मे सात लाख से ज्यादा गाँव नहीं थे तो सारे भारत मे उस समय शहरो की कुल गिनती पचास से अधिक नहीं ठहरती।

शहर की लम्बाई-चौड़ाई भी इतनी ज्यादा वर्णन की गई है कि उसमे न केवल लम्बे-चौड़े मुहल्ले शामिल होंगे बल्कि आस-पास के गाँव भी ज़रूर मिल गये होंगे। आज भी हमारे शहरों मे बड़े-बड़े गाँव और कस्बे मिल ही जाते हैं। जातकों मे गाँवों के रहनेवालों की संख्या तीस परिवारों से लेकर एक हज़ार परिवारों तक थी और एक परिवार की गिनती मे दादा, दादी, माँ, बाप, चाचा, चाची, बेटे बेटी, बहुएँ और पोते, पोती, नाती, नतिनी, जितने रसोई के भीतर भोजन करते थे, सब शामिल थे। जिस तरह आज मिले-जुले परिवार गाँव मे रहते हैं उसी तरह पहले भी रहा करते थे; और जैसे आज यह नहीं कहा जा सकता कि हम इतनी ही बड़ी बस्ती को गाँव कहेंगे उसी तरह तब भी गाँव की कोई नपी तुली परिभाषा न थी।[1]

जब कभी कोई महत्व के सार्वजनिक काम पड़ते थे तो गाँव के सब लोग मिलकर उसमे उचित भाग लेने का निश्चय कर लेते थे। गाँव का एक मुखिया होता था जिसे 'भोजक' कहते थे। भोजक को कुछ कर और दंड मिल जाया करता था। गाँव के सब रहनेवाले मिल कर सलाह करते थे। उसमे भोजक भी शामिल होता था। एक जातक मे लिखा है कि बोधिसत्व और गाँववाले मिलकर रम्बे और फावड़े लेकर फिरे। गलियों और सड़कों मे जहाँ-कहीं पत्थर या रोड़े थे रम्बों से निकालकर किनारे लगाते गये और जो बेमौके राह मे पेड़ पड़ते थे, जिनसे रथों के और गाड़ियों के चलने मे रुकावट होती थी, उन्हे फरसों से काट डाला, ऊँची नीची, उबड़-खाबड़

१. जातक ३।३६५, ४।३३० विनयपिटक, कुल्ल ५, अध्याय ५।१२; जातक १।१०६,

जगहो को बराबर कर डाला। उन्होने सड़कें ठीक कर डालीं, पानी के तालाब बना डाले और एक बड़ा दालान तैयार कर डाला, परन्तु उसकी छत के लिए उनके पास सामान न था। वह एक देवी के पास था, जिससे मोल लेने को उनके पास धन न था। पर उनके काम में शरीक होने को वह राज़ी हो गई और उन्हे वह सब सामान मिल गया। इस कथा से यह प्रकट है कि उस समय के धार्मिक नेता भी गॉव का सुधार कराने के लिए गाँववालो के साथ मिलकर काम करने मे शामिल हो जाते थे। साथ ही उस समय गॉव वालो के मन मे ऐसा भाव भी था कि अपने खेत मे मोटे से मोटा काम करने मे किसी तरह की हेठी न थी, पर राजा के यहॉ जाकर बेगार करना नीच काम था।[१]

ग्राम जो जनपद एक अश था, या सीमा पर होता था या शहर के पास होता था। उसके चारो ओर खेत और गोचर भूमि, बन और उपवन होता था। आज भी आनन्दबन, प्रमोदबन, सीताबन, वृन्दाबन आदि बनो के नाम जहॉ-तहाँ बस्तियो मे भी पाये जाते है। सारन, चम्पारन, सहारनपुर आदि मे अरण्य का पता लगता है। इन बनो और अरण्यो मे जगली जानवर और जंगली आदमी भी रहते थे और तपस्वी, सन्यासी अपनी कुटी बनाकर गाँव से दूर रहा करते थे। जंगल प्राय: सबकी सम्पत्ति होती थी। परन्तु कोई-कोई जंगल जो राजधानी से जुड़े हुए होते थे राजा के अधिकार मे समझे जाते थे। लोग जगलो से लकड़ियॉ बे रोक-टोक काट लाते थे और बेचते भी थे। गोचर भूमि मे लोग अपने पशुओ को चरने के लिए छोड़ देते थे या कोई चरवाहा होता था जो थोड़ी मजूरी पर

१. जातक १।११९, १।३४३

सबके पशु चराया करता था और चौमासे भर जंगलो मे रहता और पशुओ की रक्षा करता था।[1]

इस काल मे गॉव के चारो तरफ कही-कही दीवारे भी होती थीं और गॉव के फाटक भी हुआ करते थे। खेतो मे बाड़े लगी होती थी। जाल भी तने होते थे और खेतो के पहरेदार भी होते थे और हर गृहस्थ की जोत के चारों ओर नाली से सीमा बॅधी होती थी। नालियॉ अक्सर साझे की हुआ करती थीं जिनसे दोनो ओर के खेत साझे मे सीचे जाते थे। ये नालियॉ और गड्ढे, जिनमे पानी इकट्ठा किया जाता था, सभी रूप और आकार के होते थे। यह ठीक पता नहीं लगता कि किस प्राँत मे, औसत जोत का कितना वर्गफल ठहरता था पर जातको से यह पता चलता है कि एक-एक ब्राह्मण के पास हजार-हजार करीसो (बीघो) की खेती थी। एक ब्राह्मण काशी भारद्वाज—के यहाँ पॉच सौ हलो की खेती होती थी। और वह मजूरो से हल जुतवाता था।[2]

इस युग मे लोग दुख भरे शहरो मे रहना इस लोक और परलोक दोनो के लिए बुरा समझते थे। एक जगह लिखा है कि धूल भरे शहर मे जो रहता है वह मोक्ष नही पा सकता, और दूसरी जगह लिखा है कि शहर मे कभी पवित्र मंत्रो का उच्चारण न करना चाहिए[3]। सूत्रो मे शहर के रहनेवाले के लिए कोई सस्कार, यज्ञ

१ जातक १।३१७।, ५।१०३; १।३८८, ३।१४९, ३।४०१; १।२४०; ४।३२६, १।१९४; १।२

२. जातक १।२३९, २।७६।१३५; ३।७; ४।३७०, १।२१५; १।१४३।१५४, २।११०; ४।२७७; ४।१६७, १।३३६; ५।४१२; २।३५७; १।२७७: ३।१६२; ३।२९३; ४।२७६, २।१६५।३००;

३ आपस्तम्ब धर्मसूत्र, १।३२।२१; बौध्यायनसूत्र, २।३।६,३३

या विधि नहीं दी हुई है। परंतु किसानो के लिए पद-पद पर रीतियाँ और विधियाँ दी हुई है। हल जोतने के समय अशनि, सीता, अरदा, पर्जन्य, इन्द्र और भग के नाम से हवन कराया जाता था। बोने के समय, काटने के समय, दँवाने के समय और नये अन्न को लाने के समय यज्ञ कराये जाते थे। यह सब किसानो की क्रिया थी। बार-बार यह आदेश दिया गया है कि चौरस्ते पर, भिटे पर, वाल्मीको (बांबियो) पर, गॉव से बाहर निकलकर यज्ञ या पूजा करनी चाहिए। यह गॉव के रहनेवाले गृहस्थो और विद्वानो के लिए भी आदेश है। शहर के रहनेवालो के लिए नही[१]। अग्रेजी के (Buddhist India) "बुद्ध कालीन भारत" नामक ग्रथ से मालूम होता है कि बौद्ध साहित्य से उस समय के केवल बीस शहरो का पता लगता है जिनमे से ये छः महानगर कहे गये है—श्रावस्ती, चम्पा, राजगृह, साकेत, कौशाम्बी और बनारस। कुशीनारा, को जहाँ बुद्ध भगवान् ने शरीर त्याग किया है, थेर आनन्द ने जगल का एक छोटा सा कस्बा लिखा है। पाटलिपुत्र अर्थात् आजकल के पटना का उस समय तक पता न था।

राजा को खेत की उपज मे से वार्षिक दसवॉ भाग तक कर मिलता था। वह इतने के लिए ही भू-पति समझा जाता था। जो कुछ पैदावार होती थी, उसे गॉव का मुखिया भोजक या सरकारी कर्मचारी महामात्य या तो खलियान के सामने नाप लेता था या खडी फसल को देखकर अटकल कर लिया जाता था। कभी-कभी सरकार इस कर को बढाकर किसी-किसी कारण से आठवॉ या छठा अश तक भी कर देती थी। किसी-किसी का यह कर राजा छोड़ भी देता था, या किसी समूह या गॉव को मुक्त भी कर देता

१ गोभिल गृह्यसूत्र ४।४।२८,-३०. ३।५।३२-३५

था। यह तो राजाओं की बात हुई जिनके कर उगाहने की चर्चा पोथियों मे आई। परंतु पंचायती राज जहाँ-जहाँ थे वहाँ-वहाँ कर उगाहने की कोई चर्चा नहीं है। एक-आध जगह पंचायती राज मे चदे की तरह कर उगाहने की चर्चा भले ही है। एक जगह लिखा है कि मल्लो के पंचायती राज मे पचों ने यह आज्ञा निकाली थी कि जब बुद्ध भगवान अपनी यात्रा मे बस्ती के पास आवें तो हर आदमी को उनका स्वागत करने के लिए जाना चाहिए। जो न जायगा उसको पाँचसौ रुपये दण्ड के होगे।[१] यद्यपि जंगल पर सार्वजनिक अधिकार था तथापि राजा को जब ज़रूरत पड़ती थी तब वह जगल की ज़मीन को बेच सकता था और वह अपनी जायदाद मे खेती करनेवाले मजूरो और किसानो से बेगार भी ले सकता था। कहीं-कहीं के किसान गाँववाले राजा के लिए हरिण के जंगल घेर रखते थे कि उन्हे समम-कुसमय शिकार हाँकने के लिए काम-धाम छुड़ाकर बुलाया न जाय।

उस समय मगध के राज मे भूमि बेची नहीं जा सकती थी पर दान दी जा सकती थी। कोसल के राज मे बेची भी जा सकती थी। जिस भूमि में बाड़ नहीं लगी होती थी उसमे सब लोग अपने पशु चरा सकते थे, लकड़ी काट सकते थे, फूल चुन सकते थे, फल तोड़ सकते थे। खेती के नियम कड़े थे, परंतु अच्छे थे और विवेक से भरे थे। मिल्कियत सिद्ध करने के लिए दस्तावेज़ (कागज़ पत्र), गवाह और क़ब्ज़ा प्रमाण माने जाते थे।[२]

१. विनय पिटक १।२४७

२. जातक ४।२८१ ; विनयपिटक २।१५८; आपस्तम्ब २।११।२८ (१) १।६।१८ (२०), गौतम १२।२८; १२।१४-१७ ; वशिष्ठ सूत्र १६।१९

यूनानी लेखको से पता चलता है कि उस समय भी सियारी और उन्हारी की—रबी और खरीफ की—दो फसलें होती थीं और जिस तरह आजकल अनाज की खेती होती है उसी तरह तब भी होती थी। जो अनाज आज उपजते है वही तब भी उपजते थे। गन्ने की खेती होती थी और खँडसाले चलती थी। इतनी शकर तैयार होती थी कि ससार के बाहर के सभी सभ्य देशो मे यहाँ से शकर जाती थी।[१] सुन्दर और बारीक कपड़े, कपास, ऊन, रेशम, छाल आदि सभी तरह के इस समय भी बनते थे और जंगल की औषधियाँ और तरह-तरह का माल अब भी उसी तरह काम मे आता था। वाणिज्य व्यापार उसी तरह बढ़ा-चढ़ा था। जो बाते हम पिछले अध्याय मे लिख आये है उन बातो का, विदेशियो के बयान से, इस काल मे बहुत ऊँची अवस्था मे होना पाया जाता है। बौद्ध मत का प्रचार भारत के बाहर के देशो मे इसी समय मे शुरू हुआ। आना-जाना, बनिज-व्यापार पहले से ज्यादा बढ़ गया। यहाँ के बने कपड़े शकर, चित्रकारी, मूर्तियाँ हाथी दाँत की बनी सुन्दर चीज़ें, मसाले आदि भाँति-भाँति की वस्तुये भारत से बाहर बड़ी मात्रा मे जाती थीं और यहाँ की सभ्यता और धन सम्पति की कहानी सुनाती थीं।

दुर्भिक्षो के बारे मे जहाँ अपने यहाँ के ग्रन्थो मे चर्चा आया करती है वहाँ मेगस्थनीज़ जैसे विदेशी कहते है कि भारतवर्ष मे अकाल कभी पड़ता ही नही। इससे यह अटकल लगायी जा सकती है कि अकाल पड़ते थे जरूर, परन्तु बहुत जल्दी-जल्दी नही पड़ते थे

[१] स्ट्राबो १५सी—६९३, मेगेस्थनीज़ खण्ड ९। स्ट्राबो १५सी ६९० से ६९२ तक।

और जहाँ-कहीं पड़ते थे वहीं उनका प्रभाव रहता था। वह सारे भारत मे फैल नहीं जाते थे।

७. बौद्धकाल का अन्त

जो काल बुद्धावतार पर समाप्त होता है जातको मे उस काल के सम्बन्ध मे एक बड़े महत्व की बात लिखी पाई जाती है। इस समय प्रायः सभी कारीगरी और कलाओ की पचायते संगठित थीं। 'मूगपक्ख' जातक (४।४११) मे इस तरह की अट्ठारह पंचायतो की चर्चा है जिनमे से बढ़इयो, लुहारो, खाल सिभानेवालो और चित्र-कारो की पचायतो का विशेष उल्लेख है। परन्तु 'प्राचीन भारत के आर्थिक इतिहास' (पृ० १०१) मे लिखा है—"डाक्टर मजूमदार ने इस काल के जातकों और धर्मग्रंथों से पता लगाया है कि इन नौ प्रकार के पेशेवालों की पंचायतें संगठित थीं—(१) काठ के काम करनेवाले, जिनमें नाव बनानेवाले शामिल थे (२) धातु के काम करनेवाले, जिन में सोना-चाँदी साफ़ करनेवाले शामिल थे (३) माली (४) चित्रकार (५) बनजारे[1] (६) साहूकारी करनेवाले (७) खेती करनेवाले (८) व्यापार करनेवाले (९) पशु-पालन करनेवाले"।[2] एक जातक मे (२।१८) लिखा है कि एक जगह लकड़ी के काम का भारी केंद्र था जिसमे एक हज़ार परिवार रहते थे। इनकी दो बराबर-बराबर पंचायते थीं और हर पचायत का सरपच जेट्ठक कहलाता था (जेट्ठक का अर्थ है बड़ा भाई)। . इन पचायतो मे तीन विशेष-तायें थीं। (१) सरपच एक जेट्ठक होता था (२) पेशा अपने कुल का

१. जातक ६। ४२७, जातक न० ४१५, जातक २। २९५

२. गौतम के सूत्र ११।२१

चलता था और (३) धन्धा अपनी जगह मे वॅध जाता था, (या यो कहना चाहिए कि खास-खास धन्धो के लिए खास-खास जगहे प्रसिद्ध हो जाती थीं।) जातको से मालूम होता है (२।१२।५२ और ३।२८१) कि पंचायत का सरपच राज-दर्बार मे रहनेवाला एक वडा मन्त्री होता था। जेट्ठक के सिवाय सरपंच को 'पमुक्' (प्रमुख या सभापति)" भी कहते थे।

बनारस के राज की यह विशेषता मालूम होती है कि उस समय पचायत के सरपच काशिराज के बड़े कृपापात्र होते थे। एक सरपच तो सारे राज्य का कोषाध्यक्ष ही था।[१] ऐसा अनुमान होता है कि उस समय जो थोड़े से बड़े-बड़े शहर थे उनके आसपास के गॉवो मे कारीगरी और कलाओ के काम बढ़े-चढ़े थे। रोज़गार इतना वढ़ गया था कि शहर के पास के गॉवो मे किसान लोग खेती के सिवाय हाथ की कलाओ से भी दक्ष हो गये थे। हम जातको मे बारम्बार ऐसे गॉवो का वर्णन पाते है जैसे लुहारो के गॉव जिनमे एक हज़ार घर लुहारो के ही थे। इसी तरह ऐसे गॉव भी थे जिनमे पॉच-पॉच सौ घर बढ़इयों के थे। इसी प्रकार कुम्हारो के भी गॉव के गाँव वसे हुए थे। इसी तरह व्याधगाम, निषाधगाम इत्यादि पेशेवरो के नाम से भी गॉव बसे थे।[२] इन गॉवो के पेशेवाले शहर मे रहनेवाले पेशे वालो से भिन्न थे। वे किसान भी थे और लुहारी भी करते थे। बढ़ई भी थे और खेती भी करते थे। खेती के काम मे उनका सारा समय नही लगता था। वे खेती का सारा काम अपने अपने हाथो से करते

१ जातक ३।३८७, जातक २।१२।५२

२ जातक ३।२८१—६;, जातक २।१८।४०५, जातक ३।३७६।५०८, जातक ६।७१ ३।४९,

थे तो भी उन्हे पेशे का काम करने के लिए काफी संयम मिल जाता था, और जिनका पेशे का कारबार बहुत बढ़ा हुआ था वे मजूरो से काम लेते थे। जान पड़ता है कि उस समय बेकारी की बीमारी न थी।

ये पंचायते कानून बनाती थीं, मुकद्मे फैसले करती थीं और जो कुछ फैसला होता था, उसको व्यवहार मे लाना भी उन्हीं का काम था। विनयपिटक मे लिखा है कि किसी चोर स्त्री को तबतक संन्यासिनी बनाये जाने का अधिकार नहीं है जबतक पचायतो की ओर मे आज्ञा न मिल जाय। जो लोग पचायत मे शामिल होते थे उनके घरेलू झगड़े भी, स्त्री-पुरुष का वैमनस्य भी, पचायत के सामने आता था और पंचायत निबटारा करती थी।[1]

किसी लेख से ऐसा नहीं मालूम होता कि उस काल मे खेती का काम कोई नीच काम समझा जाता हो। खेती करनेवाला अपने समाज मे खेती करने के कारण अपमानित नहीं समझा जाता था। इसमे तो सदेह नहीं है कि खेती, व्यापार और पशुपालन वैश्यो का ही काम था और जो ब्राह्मण पुरोहिती का काम करते थे या जो पढ़ाने का काम करते वे खेती नहीं करते थे। पर ऐसे ब्राह्मण भी थे, जो न तो पुरोहिती का काम जानते थे और न विद्या ही पढ़े होते थे। ऐसे ब्राह्मणो के लिए सबसे उत्तम काम खेती थी, मध्यम काम बनियई थी। सेवा का काम सबसे नीच काम था और भीख तो वही माँगता था जो गया-गुजरा अपाहिज था। क्षत्रिय का काम भी राजदरबार या सेना और पुलिस का था। परन्तु जिन्हे इस तरह का काम न मिलता था वे लाचार होकर वैश्य या शूद्रका काम करने

१. विनयपिटक ४।२२६, गौतम ११।२१,

लग जाते थे। राजा ययाति की कथा सतजुग की है। यह प्रसिद्ध है कि उन्होने अपने कई बेटो को राज के काम से अनधिकारी बना दिया। उनके वंशवाले लाचार होकर वैश्य और शूद्र का काम करने लगे। नन्द और वृषभानु आदि गोपालक ऐसे ही अधिकारहीन किये हुए यादव थे। परन्तु वैश्य द्विजाति थे और द्विजातियो के सभी अधिकार इन्हे प्राप्त थे और जो ब्राह्मण या क्षत्रिय जन्म से यह (वैश्यों का) काम करने लगते थे उन्हे कोई नीच नहीं समझता था। उनका सम्मान भी ब्राह्मण और क्षत्रिय की तरह ही होता था।[1] यद्यपि वे ब्राह्मणत्व और क्षत्रित्व से गिरे हुए समझे जाते थे तो भी वैश्यों का काम उठा लेने से कोई उन्हे ताने नहीं देता था और किसी तरह का अपमान नहीं होता था। जातको और सूत्रो मे ऐसे ब्राह्मणो की चर्चा बहुत आई है जो खेती करते हैं, गौएँ चराते है, बकरी का रोजगार करते है, बनिये का काम करते है, शिकार खेलते है, बढ़ई और लुहार का काम करते है, जुलाहे का काम करते है, बाण चलाते हैं, बनजारों की रक्षा करते है, रथ हाँकते है और सँपेरे का काम करते है।[2] इस तरह के ब्राह्मणो और क्षत्रियो के वशवाले उस समय के वैश्य और शूद्र वशवालो से ऐसे मिलजुल गये और रोटी-बेटी का ऐसा घना सम्बन्ध हो गया कि आज इन पेशेवालो मे मे यह भेद करना मुश्किल हो गया है कि कौन ब्राह्मण है, कौन क्षत्रिय है और कौन वैश्य। यह भेद तो उन्हीं मे देखा जाता है जो हाल के ही पतित है। अनगिनतियो ब्राह्मण और क्षत्रिय आज किसान का काम करते हैं और अपने को किसान कहने और मानने मे उन्हे

१. सुत्तनिपात ३।९, मज्झिम निकाय २।१८०, जातक ४।३६३

२ जातक २।१६५, ३।२९३, ४।१६७-२७६। ; ३।४०१ ; ४।१५ ; ५।२२-४७१, २।२०० ; ६।१७०, ४।२०७, ४५७ ; ५।१२७ ;

उचित गर्व है, वे उसे पतन नहीं मानते। उस काल मे भी यही भाव सबसे ऊपर था। कहीं-कहीं ब्राह्मण किसान बड़ा पवित्र आत्मा और भक्त समझा जाता था। एड़ी से चोटी तक बोधिसत्व गिना जाता था।[1] "उत्तम खेती, मध्यम बान; निर्धिन सेवा भीख निदान" यह आजकल की प्रसिद्ध कहावत उस समय भी ब्राह्मणो और क्षत्रियो के लिए राह दिखानेवाली थी।

उस काल मे मजूर और शूद्र दो तरह के थे। एक तो किसान आप ही मजूरी करते थे, दूसरे वह मजूर भी थे जिनके पास खेत न थे। जो मजूरी या नौकरी के सिवाय जीविका का और कोई उपाय न रखते थे, वे लकड़ी काटते थे, पानी भरते थे, हल जोतते थे और सेवा के सब तरह के काम करते थे। बड़े-बड़े खेतिहर अपने यहाँ मजूर रखकर खेती का काम कराते थे। मजूरी सब तरह की दी जाती थी। भोजन, कपड़ा और रुपये सबकी चाल थी। इन दो प्रकारो के सिवाय मजूरो का एक तीसरा प्रकार भी था। कैदी, ऋणी और प्राणदंड के बदले काम करनेवाले और अपने आप अपने को बेच देनेवाले या न्यायालय से दड पाकर काम करनेवाले, दास या दासी अपनी मीयाद भर या जीवन भर गुलामी करते थे। परन्तु ऐसे लोगो की गिनती भारतवर्ष मे बहुत न थी। साधारण मजूरो की अपेक्षा इन दासो के साथ वर्ताव भी अच्छा ही होता था। इनका लाड़-प्यार होता था। इन्हे लिखना-पढ़ना और हाथ की कारीगरी भी सीखने का मौका दिया जाता था। कभी-कभी किसी के द्वारा इनके साथ कड़ाई का बर्ताव भी होता होगा, ऐसा प्रतीत होता है। दास जब तक मुक्त नहीं हो जाता था, तब तक धर्म सघ मे वह सम्मि-

१ जातक ३।१६२

लित नहीं होने पाता था। शायद इसलिए कि इससे उसके मालिक के काम में हर्ज होता। इन दासों और दासियों को अपने जीवन से असतोष नहीं था क्योंकि इनके भाग जाने की चर्चा कहीं नहीं पाई जाती।[1] नित्य की मजूरी करनेवाला किसीका गुलाम तो नहीं था तो भी कभी-कभी ऐसे मौके आजाते थे कि उसका जीवन गुलामों की अपेक्षा अधिक कठिन हो जाता था।[2]

उन दिनों रहन-सहन का खर्च कैसा था यह कहना तो मुश्किल है। परन्तु जातकों से यह पता लगता है कि एक धेले के तेल या घी से आदमी का काम भरपूर चल सकता था। आठ कहपान में एक अच्छा गधा खरीदा जा सकता था। चौबीस मुद्राओं में एक जोड़ी बैल मिल जाते थे। अर्द्ध मासक आजकल के धेले या पैसे के बराबर समझा जाय और कहपान या कार्शपण अठन्नी के बराबर माना जाय और उपर्युक्त मुद्रायें एक-एक रुपये के बराबर मानी जायें तो उस समय का खर्च आजकल की अपेक्षा बहुत सस्ता समझा जायगा। परन्तु यह बात अनुमान के आधार पर है। सिक्के का वास्तविक मूल्य कब कितना समझा जाना चाहिए यह अर्थशास्त्र का एक जटिल प्रश्न है। इसपर यहाँ विचार करना हमारा उद्देश्य नहीं है।

१ जातक १।४५१; मज्झिम निकाय १।१२५, जातक १।४०२ विनयपिटक १।७६, जातक ५।३१३, ६।५४७

२ जातक १।४२२, ३।४४

: ४ :

चाणक्य के समय के गाँव

इतिहास लिखनेवालों के निकट बुद्धकाल का अन्त उस समय समझा जाता है जब चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा और शासन की असली बागडोर चाणक्य के हाथ में आई। इस प्रकांड पण्डित ने 'अर्थ-शास्त्र' नाम की एक पुस्तक लिखी। इस पोथी से उस काल के बारे में पता लगता है जिसमें मौर्य्य वंश का राज हुआ था और जो विक्रम के एकसौ तीस बरस पहले समाप्त होता है 'अर्थशास्त्र' से मालूम होता है कि गाँवों के कई तरह के विभाग किये गये थे। प्रथम कोटि, मध्यम कोटि और सबसे नीची कोटि के सिवाय ऐसे भी गाँव थे जिन्हें अन्न, पशु, सोना, जंगल की पैदावार आदि किसी रूप में कोई कर नहीं देना पड़ता था। ऐसे गाँव भी थे जहाँ से कर के बदले बेगार मिलती थी और ऐसे भी थे जिनसे कर के बदले दूध, दही घी मक्खन आदि मिलते थे।[1] कुछ बातों में तो सभी गाँव समान थे। हर गाँव में बड़े-बूढ़ों की एक पंचायत होती थी। इस पंचायत का जो कोई सरपंच होता था वही सरकार की ओर से गाँव का मुखिया माना जाता था। ज़मीन्दारी का कोई रिवाज़ नहीं था। हर किसान अपने खेत का मालिक था। गाँव में घर सब एक साथ लगे होते थे बीच में गलियाँ होती थीं। बस्ती के चारों ओर बहुत दूर तक फैली

१. अर्थशास्त्र (पण्डित प्राणनाथ विद्यालंकार का उल्था) पृष्ठ १२९, ३९-४१।

हुई नाज की, विशेष रूप से, धान की खेती होती थी। हर गॉव से मिली हुई पशुओ के चरने के लिए गोचर भूमि होती थी जिसका बन्दोबस्त राजा को करना पड़ता था। गृहस्थो के अपने-अपने पशु अलग होते थे, पर गोचर भूमि सबकी एक ही होती थी। इसी गोचर भूमि मे वे खुले हुए मैदान भी होते थे, जिनमे बनजारे और घूमनेवाली जंगली जातियॉ आकर ठहर जाती थीं और आये दिन डेरे डाला करती थीं।[१] गॉवो की हदें बॅधी हुई थीं। हर गॉव मे चौपाल और दालानें पंचायतो के काम के लिए बनी होती थीं और गॉव का भीतरी अर्थशास्त्र बिलकुल स्वतंत्र होता था। गॉव के भीतरी बन्दोबस्त मे किसी बाहरी का हाथ बिलकुल नहीं होता था। गॉववाले सब बातो का निबटारा आप कर लेते थे। घूमनेवाली जातियॉ या चरवाहो की बस्तियॉ न तो बहुत काल के लिए टिकाऊ होती थीं और न गाँवो की तरह सुसगठित थीं। गोचर भूमि और गोरक्षा उस समय मे ऐसे महत्व की बात समझी जाती थी कि खेती के अध्यक्ष की तरह राज दरबार मे गोशाला के अध्यक्ष अलग और गोचर भूमियो के अध्यक्ष अलग होते थे।[२] गोशाला के अध्यक्ष को केवल गाय भैस की ही खबर नही लेनी होती थी, बल्कि भेड़, बकरियॉ, गधे, सुअर, खच्चर और कुत्तो के लिए भी बन्दोबस्त करना पड़ता था।

गॉव बसाने के सम्बन्ध मे कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे जो नियम दिये हुए है उनसे बहुत कुछ पता चलता है। यहॉ हम पण्डित प्राणनाथजी के अनुवाद से (पृ० ३९-४१) नीचे जो अवतरण देते हैं उससे उस समय के गॉव की राज्य-व्यवस्था का पता लगता है —

१. मेगेस्थनीज़ (अग्रेज़ी १, ४७)

२ अर्थशास्त्र पृ० ११५-१६, १२८

"परदेश या स्वदेश के निवासियों के द्वारा शून्य या नवीन जन पद को बसाया जाय। प्रत्येक ग्राम सौ परिवार से पाँच सौ परिवार तक का हो। उसमें शून्य कृषकों की संख्या अधिक हो और उनकी सीमा एक कोस से दो कोस तक विस्तृत हो। वह इस प्रकार स्थापित किये जाँय कि एक दूसरे की रक्षा कर सकें। नदी, पहाड़, जंगल, पेड़, गुहा, नहर, तालाब, सींमल, पीतल तथा बड आदि से उनकी सीमा नियत की जाय। आठसौ ग्रामों के मध्य में स्थानीय, चारसौ ग्रामों के मध्य में द्रोणमुख, दोसौ ग्रामों के मध्य में खार्वटिक तथा दस ग्रामों के मध्य में संग्रहण नामक दुर्ग बनाये जायँ। राष्ट्र-सीमाओं पर अन्तपाल के दुर्ग खड़े किये जायँ और प्रत्येक जनपद-द्वार उसके द्वारा सुरक्षित रक्खा जाय। वागुरिक, शबर, पुलिन्द, चंडाल तथा जगली लोग शेष सम्पूर्ण सीमा की देख-रेख करे।

ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रियों को अभिरूप फलदायक ब्रह्मदेय[1] दिया जाय और उनको राज्यदंड तथा राज्य कर से मुक्त किया जाय। अध्यक्ष, संख्यायक, गोप,- स्थानीक, अनीकस्थ, चिकित्सक, अश्व दमक, जंघारिक आदि राज सेवकों को भूमि दी जाय परन्तु उनको यह अधिकार न हो कि वह उसको बेच सके या थाती (गिरवी) रख सके। राजस्व देनेवालों को ऐसे खेत दिये जायँ जो कि एक पुरुष के लिए पर्याप्त हों। खेतिहरों को नई भूमि न दी जायँ। जो खेती न करे, उनसे खेत छीन कर अन्यों के सिपुर्द किये जायँ। ग्राम भृतक या बनिये ही उनपर खेती

१ ब्रह्मदेय वह दान है जोकि ब्राह्मणों को स्थिर रूप से सदा के लिए देदिया जाय। ताम्र पात्र तथा बहुत से शिलालेख खोदने से मिले हैं जिनमे पुराने राजाओं ने भिन्न-भिन्न भूमि भागों को ब्रह्मदेय के रूप मे ब्राह्मणों को दिया था। (प्राणनाथ विद्यालकार)

करे। जो खेत जोतें वे सरकारी हर्जाना (अपहीन) भरें। जो सुगमता से राजस्व दें उनको धान्य, पशु तथा हिरण्य से सहायता पहुँचाई जाय। साथ ही ख़याल रखा जाय कि अनुग्रह[1] तथा परिहार[2] से कोश की वृद्धि हो और जिससे कोश के नुक़सान की संभावना हो उसको न किया जाय। क्योंकि अल्प कोशवाला राजा नागरिकों तथा ग्रामीणों को ही सताता है। नये बन्दोबस्त या अन्य आकस्मिक समय में ही विशेष-विशेष व्यक्तियों को राजस्व से मुक्त किया जाय और जिनका राज्यकर-मुक्ति या परिहार का समय समाप्त हो गया है उनपर पिता के तुल्य अनुग्रह रखा जाय।"

मौर्य्यकाल मे भी देश का सबसे बड़ा कारबार खेती का था। इस पर सरकार का बहुत बड़ा ध्यान था। सब तरह के अनाज तो उपजते ही थे साथ ही गन्ने की खेती बहुत ज़ोरो से होती थी। गुड़ खॉड, मिश्री सभी कुछ तैयार होता था। अंगूर से भी एक प्रकार का मीठा तैयार किया जाता था जिसे मधु कहते थे। खॉड तैयार करने के लिए गॉव-गॉव मे खॅडसाले थीं।[3] शकर का रोज़गार बढ़ा-चढ़ा था। मेगेस्थनीज़ लिखता है :—

"भारतवर्ष में बडे लम्बे-चौड़े अत्यन्त उपजाऊ मैदान हैं जो

१ अनुग्रह—उत्तम काम करने के बदले मे कारीगरो—किसानो को राजा जो धन आदि इनाम मे दे उसको 'कौटिल्य' ने 'अनुग्रह' शब्द से सूचित किया है। (प्रा० वि०)

२. परिहार—राज्य कर से मुक्त करना। पुत्रोत्पत्ति, वर्षगाँठ आदि समय मे राजा लोग ऐसा करते थे, कौटिल्य ने इन सब समयो को आदि 'यथागतक' शब्द से सूचित किया है। (प्रा० वि०)

३. अर्थशास्त्र पृ० ८५, ८६.

खेतों से हरे-भरे दीखते हैं और जिनकी सिचाई के लिए नदियों का जाल-सा बिछा दीखता है.........जौ, गेहूँ, चावल आदि के सिवाय ज्वार, बाजरा और अनेक प्रकार की दालें और मनुष्य और चौपायों के भोजन के योग्य नाना प्रकार के पौधे होते हैं....जाड़ों में और गर्मियों में दो बार बरसात होती है और साल में दो फ़सलें होती हैं। विविध प्रकार के स्वाद और मिठास के कन्द, मूल और फल होते हैं जिनसे मनुष्यों का बहुतायत से पोषण हो सकता है......। बुरे-से-बुरे युद्ध में भी किसानों की कोई हानि नहीं होती; फ़सल को, पशुओं को, खेतों को या पेड़ लतादि को कोई नुक़सान नहीं पहुँचता। भारत के किसान बड़े मिहनती होते हैं, बड़े चतुर होते हैं, किफ़ायत से रहते हैं और ईमानदार होते हैं। सरकारी प्रबन्ध ऐसा अच्छा है कि खेती का व्यापार बड़ी अच्छी दशा में है। जन, धन की पूरी रक्षा है, न्याय और क़ानून बड़े अच्छे हैं"[1]

मेगस्थनीज़ के लेख से मालूम होता है कि सिंचाई का प्रवन्ध बड़ा ही उत्तम था। नहरों का भी एक विभाग था, अर्थशास्त्र से भी इस बात का पूरा समर्थन होता है कि सिंचाई का सरकारी प्रवन्ध था, और जिन लोगों को सरकार की तरफ से जल मिलता था उसके लिए कर देना पड़ता था। खेती के लिए एक सरकारी अफसर अलग था वह सीताध्यक्ष कहलाता था। उसके लिए अर्थशास्त्र पृष्ठ १०४ में लिखा है—

"सीताध्यक्ष (कृषि का अध्यक्ष या प्रबन्ध कर्ता) कृषि-विज्ञान, गुल्मशास्त्र (झाड़ियों की विद्या), वृक्ष-विद्या तथा आयुर्वेद में पाण्डित्य

१. 'प्राचीन भारत का इतिहास' नामक ग्रंथ में पृ० १३९ पर का अवतरण।

प्राप्त कर, या उन लोगों से मैत्री कर, जो कि इन विद्याओं में पण्डित हैं, धान्य, फूल-फल, शाक, कन्द, मूल, पालक, सन, जूट, कपास, बीज आदि समय पर इकट्ठा करे। बहुत हलों से जोती हुई भूमि पर दास, कर्मकर, अपराधी आदमियों से बीज डलवाये और हल, कृषि सम्बन्धी उपकरण तथा बैल उनको अपनी ओर से दे तथा काम हो जाने के बाद लौटा ले। तरखान (कर्मार) खटीक (कुट्टाक), तेली, रस्सी बँटनेवाले, बहेरिये लोगों से उनको सहायता पहुँचाये। यदि काम ठीक न हो तो उनसे हरजाना वसूल किया जाय।"

कताई और बुनाई का काम भी मौर्यकाल मे कोई छोटे पैमाने पर नही होता था। जिस तरह खेती के विभाग के लिए सरकारी अफसर सीताध्यक्ष होता था उसी तरह कताई-बुनाई के काम पर एक सरकारी अफसर सूत्राध्यक्ष नियुक्त होता था। वह कारीगरो से सूत, कपड़ा और रस्सी का काम भी करवाता था। उसका काम था कि बैरागिनो, विधवाओ, विकलॉग लड़कियो, राज्य दण्डितो, बूढ़ी राजदासियो और मन्दिर के काम से छुटी देवदासियो और साधारणतया सभी लड़कियो से ऊन, रेशे, रुई, जूट सन आदि के सूत कतवाये और सूत की चिकनाहट, मुटाई और उत्तम, मध्यम निकृष्ट दशा देखकर उनका मिहनताना नियत करे। इस तरह सूत की कताई के लिए, उसकी ठीक जॉच के लिए और ठीक-ठीक मजूरी देने के लिए बड़े विस्तार से नियम बने हुए थे।[1] और इसके सम्बन्ध में अपराधियो के लिए बड़े कड़े-कड़े दण्ड भी थे, जैसे जो मेहनताना लेकर काम न करें उनका अँगूठा काट दिया जाय। यही दण्ड उनको भी मिले जो कि माल खा गई हो, लेकर भाग गई हो या चुरा ले गई

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र पृ० १०२, १२३

हो। ज्ञान पड़ता है कि कताई के ये नियम राजधानी के पास के गाँव के हैं जिनका सरकारी विभाग से कपास, रुई और मजूरी पाने का बन्दोबस्त था और यह कानून उन लोगो के लिए था जो उस सरकारी विभाग के लिए कातने को बाध्य किये जा सकते थे। परन्तु औरो को कातने की मनाई न थी। शहर से दूसरे गाँव मे रहनेवाले लोग, बूढ़े, जवान, बच्चे सभी कातते होंगे। क्योकि पहले तो पहनने के लिए कपड़े सारी आबादी को चाहिए और दूसरे भारत के बाहर से कपड़े के आने की कहीं चर्चा नहीं है। इसलिए कताई-बुनाई का काम अवश्य ही गाँव मे घर-घर होता था। सरकारी तौर से इस कला का प्रबन्ध यह प्रकट करता है कि कताई और बुनाई का रोज़गार खेती-बारी की तरह भारी महत्त्व रखता था। उस समय यह भी कानून था कि किसी के पास खेत हों, और वह खेती न करता हो तो उससे खेत लेकर खेती करनेवाले को दे दिये जायँ। इससे कोई बेकार खेत न रख सकता था।

कोष्ठागाराध्यक्ष के कर्तव्यो की तालिका से[1] पता लगता है कि उस समय खेती के कारबार के साथ ही साथ खण्डसाल के सिवाय जिसकी चर्चा हम कर चुके है, तिलहनो से तेल निकालने का काम बहुत ज़ोरों से होता था। रंग का कारबार भी बहुत चढ़ा-बढ़ा था। यूनानी लेखको से पता चलता है[2] कि लाख आदि कीड़ो से पैदा होनेवाले रंग भी उस समय निकाले जाते थे और कपड़े रगने के सिवाय लोग अपनी दाढ़ियाँ भी विविध रंगो मे रंगते थे। कुम्हार लोग बड़े उत्तम-उत्तम प्रकार के बासन बनाते थे। बँसफोर बाँस

१. कौटिल्य अर्थ शास्त्र (पं० प्राणनाथ) पृ० ८४ से ८८ तक

२. नियारकोस (अंग्रेज़ी) खंड ९ व १० ।

और बेंत और छाल के सब तरह के सामान तैयार करते थे। नदी किनारे के गाँव मे धीमर मछलियाँ मारते थे और समुद्र के किनारे मोती और शंख खोज लाते थे। सूखी मछलियों और सूखे माँस के व्यापार की चर्चा से यह भी पता लगता है कि ये चीजें बिकने के लिए बहुत दूर-दूर भेजी जाती होगी। उस समय आटा भी गाँव से पिस कर शहर मे बड़े भारी परिणाम मे बिकने को आता होगा।

पञ्चायतो का संगठन उस समय इतने महत्व का था कि उसके लिए सघ वृत्त नाम का एक अधिकरण ही अर्थशास्त्र मे अलग रखा गया है। इस अधिकरण के पढ़ने से[1] यह जान पड़ता है कि उस समय सघो के अधिकार बहुत बढ़े हुए थे। छोटी-छोटी पचायतो को एकत्र करके लोगो ने संघ बना रखे थे। लिखा है कि काम्बोज, सुराष्ट्र, क्षत्रिय, तथा श्रेणी आदि सघ खेती, पशु-पालन और बनिज मे सन्तुष्ट रहते थे और शस्त्र की जीविका भी करते थे, अर्थात सिपाही का काम भी करते थे। लिच्छविक, वृज्जिक, मद्रक, कुक्कुर, कुरु, पांचाल आदि के सघ भी थे। इनके बारे मे यह लिखा है कि ये लोग राजा शब्द से सन्तुष्ट रहते थे। आगे चलकर भेद-नीति का वर्णन किया है, जिससे पता चलता है कि काम्बोज, सुराष्ट्र आदि बड़ी चतुर जति के थे। लिच्छविक आदि नाम पर मोहित होजाते थे। राजा स्वभावतः इन पंचायतो को निर्बल रखने मे अपना अधिक कल्याण समझता था। इसीलिए फोड़-फाँस लगाये रहता था। भेद-नीति का विस्तार करके लिखा है कि जब वह आपस मे जुदा हो जायँ तो उनको तितर-बितर कर दे। या सबको एक ही देश मे बसाकर उनके

१. अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० ३५५ से ३६१ तक

पाँच-पाँच या दस दस परिवार (कुल) को जोतने-बोने के लिए जमीन दे-दे। राजा शब्द से सन्तुष्ट होनेवालो का राजपुत्रों के अनुरूप शासन बनावे।

राजा को जब आवश्यकता होती थी या जब इसमे वह देश का कल्याण देखता था तो वह नए गॉव बसाता था और नई गोचर-भूमि छुड़वाता था। किसी-किसी गॉव को शुद्ध शूद्र गाँव बना देता था और किसी मे केवल ब्राह्मणों को बसाकर उनसे खेती कराता था। इस सम्बन्ध मे हम एक लम्बा अवतरण दे आये हैं। इस पर साधारणतया यह अनुमान किया जाता है कि शूद्रों को धीरे-धीरे ऊपर उठाकर वैश्य बनाने और ब्राह्मणो को धीरे-धीरे नीचे उतारकर खेतिहर बनाने मे राजा का भी हाथ था। आज जो भारी संख्या मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, और शूद्र भी खेती मे लगे हुए है, उनका जहाँ प्रधान कारण भारतवर्ष मे एकमात्र खेती के व्यवसाय का प्रधान होना है, वहाँ एक गौण कारण यह भी है कि समय-समय पर राजा वैश्य के सिवाय और वर्णों को भी खेती के काम मे लगा देने मे सहायक होता था।

मजूरो और गुलामो की दशा भी बड़ी अच्छी थी। अर्थशास्त्र मे यह नियम दिया गया है कि जिस मजूर से कोई मजूरी पहले से तय न की जाय उसे "मजूरी काम तथा समय के अनुसार दी जाय। खेतीहरों में हरवाहे, गउओ का काम करनेवालो मे ग्वाले और अपना माल खरीदनेवाले बनियो मे दूकान पर बैठनेवालो मे मेहनताना तय न होने पर आमदनी का दसवाँ भाग ग्रहण करें।" मजूरी के नियम ऐसे सुन्दर और नीतियुक्त बनाये गये थे कि काम करनेवाला और करानेवाला दोनों मे से किसी का हक नहीं मारा जाता था। दासो

के नियम भी बडे अच्छे थे। इनमे मनुष्यता की रक्षा थी। लिखा है—,

"उदर दास को छोड़कर, आर्य जाति के नाबालिग शूद्र को बेचनेवाले सम्बन्धी को १२ पण, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण को बेचने वाले स्वकुटुम्बी को क्रमशः २४, २६, ४८ पण दंड दिया जाय। यदि यही काम करनेवाला कोई दूर का रिश्तेदार या दुश्मन हो तो उसको क्रेता तथा श्रोता को पूर्व, मध्यम तथा उत्तम साहस दंड के साथ-साथ मृत्यु दंड तक दिया जा सकता है। म्लेच्छ लोग प्रजा बेंच सकते हैं तथा गिरों रख सकते हैं। आर्य्य लोग दास नहीं बनाये जा सकते हैं। पारिवारिक, राज्य दंड तथा उत्पत्ति के साधन विषयक विपत्ति के आपड़ने पर किसी भी आर्य्य जाति के व्यक्ति को गिरों रखा जा सकता है। निष्क्रय का धन मिलते ही सहायता देने में समर्थ बालक को शीघ्र ही छुड़ा लिया जाय। एक बार जिसने अपने आपको गिरों रखा है या जिसको सम्बन्धियों ने दो बार गिरों रखा है, राज्यापराध करने पर या शत्रु के देश में भागने पर वह आजीवन दास बनाया जा सकता है। धन को चुरानेवाले तथा किसी आर्य को दास बनानेवाले व्यक्तियों को आधा दंड दिया जाय। राज्यापराधी, मृतप्राय तथा बीमार को भूल से गिरों रखनेवाला अपना धन लौटा ले सकता है। जो कोई गिरों में रक्खे व्यक्ति से मुर्दा या पाखाना पेशाब उठवाये, या उसको जूठा खिलाये, या कपडा पहनने को न देकर नंगा रक्खे, या पीटे या तकलीफ दे या स्त्री का सतीत्व हरण करे उसका (गिरों रखने के बदले दिया गया) धन ज़ब्त कर लिया जाय। दायी, दासी, अर्धसीरी तथा नौकरानी सदा के लिए स्वतंत्र कर दी जाय और उच्चकुल के मनुष्य को उसके घर से भाग जाने दिया जाय।"

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ०. १६८ से १७१ तक

मजूरों के भी संघ थे। और देश में पूँजीवाले लोग भी जरूर थे। खेतिहर और बनिये मिलकर अपने व्यापार संघ बनाते थे और मजूर लोग मिलकर अपने-अपने मजूर-संघ स्थापित किये हुए थे। जहाँ दोनों के सम्बन्ध के नियम दिये गये हैं वहाँ मजूरों की पंचायत (संघ भृताह) के लिए भी नियम हैं। इन सब बातों से पता लगता है कि उस समय मिलजुलकर संघ शक्ति से काम लेने की चाल बहुत काल से दृढ़ हो चुकी थी।

सिक्कों का चलन भी उस समय बहुत निश्चित था। सोने और चाँदी दोनों के सिक्के चलते थे। तांबे के सिक्के भी थे। रुपया पण कहलाता था। अठन्नी, चौअनन्नी, दुअन्नी भी चलती थी। तांबे के अधन्ने पैसे, धेले आदि भी चलते थे, जिन्हें माषक, अर्द्धमाषक, काकिणी और अर्द्धकाकिणी कहते थे।[1] इन सिक्कों के सिवाय व्यापारी लोग एक दूसरे पर हुंडी भी चलाते थे। और इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं है कि गाँव में अदला-बदली का नियम पहले की तरह जारी था। गाँव के लोग इतने सुखी थे कि चौपालों में और पंचायतों के दालानों में अक्सर नाटक हुआ करते थे। नाचने और गानेवाले आकर गाँववालों का मनोरंजन किया करते थे। अर्थशास्त्रकार ने इस बात को बहुत बुरा बतलाया है क्योंकि इससे गाँववालों के घरेलू और खेत के काम धंधों में बड़ा हर्ज पड़ता था।

प्रोफेसर संतोषकुमार दास लिखते हैं कि इस काल में गाँव के रहनेवालों को आजकल के हिसाब से अमीर तो नहीं कहा जा

१. डाक्टर शमशास्त्री की राय में (अंग्रेज़ी अर्थशास्त्र पृ० ९८) 'रूप्य रूप' और कर्शपण एक ही चीज़ है। यहाँ पर रुपये के लिए पण शब्द का प्रयोग हुआ।

सकता, परन्तु इसमे सन्देह नहीं कि उनकी जितनी सीधी सादी ज़रूरतें थीं, सब सहज मे पूरी होतीं थीं। मेगेस्थनीज़ लिखता है कि लोग बहुत सीधी चाल-ढाल के थे। स्वभाव से संयमी थे। और गहने-पाते काम मे तो ज़रूर लाते थे परन्तु उनका पहिरावा बहुत सादा था। एक सूती धोती, कन्धे पर चद्दर, सफेद चमड़े के जूते एक भले मानस के काफी सामान थे। निर्धन और दरिद्र भी होते थे, परन्तु उनकी गिनती अत्यन्त कम थी। और वे थोड़े से निर्धन भी सरकारी आश्रय मे रहते थे। अर्थशास्त्र के अनुसार "राजा का कर्तव्य था कि बूढ़े, अपाहिज, पीड़ित और लाचार का पालन करे। और निर्धन, गर्भवती और उनके बच्चो के पालन पोषण का उचित प्रबन्ध करे।[१]"

दैवी विपत्तियो के उपायवाले प्रकरण मे आग, पानी, दुर्भिक्ष, चूहा, शेर, साँप तथा राक्षस इन आधिदैवी जोखिमो से जनपद को बचाने के उपाय बताये है। पानी, व्याधि, दुर्भिक्ष और चूहो से रक्षा के सम्बन्ध में जो-जो उपाय बताये है उन्हे हम यहाँ उद्धृत करते है–

पानी—नदी के किनारे के गाँववाले वर्षा की रातों में किनारे से दूर रहकर सोवें। लकड़ी और बाँस की नावें सदा अपने पास रक्खें। तूँबा, मषक, नाव, तमेड़ तथा बेडे के द्वारा डूबते हुए लोगों को बचावें। जो लोग डूबते हुए मनुष्य को बचाने के लिए न दौडे उनपर १२ पण जुर्माना किया जाय बशर्ते कि उनके पास नाव आदि तैरने का साधन न हो। पर्वों में नदी की पूजा की जाय। माया वेद तथा योगविद्या को जाननेवाले वृष्टि के विरुद्ध उपाय करें। वृष्टि के रुकने पर इन्द्र, गंगा पर्वत तथा महाकच्छ की पूजा की जाय।

१. अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० ३९ से ४१ तक।

व्याधि—चौदहवें अधिकरण (औपनिषदिक) में विधान किये गये तरीक़ों के द्वारा बीमारी के भय को कम किया जाय। यही बात वैद्य लोग दवाइयों से और सिद्ध तथा तपस्वी लोग शान्तिमय साधन तथा प्रायश्चित्तों के द्वारा करें। फैलनेवाली बीमारी (मरक) के सम्बन्ध में भी यही तरीके काम में लाये जायँ। तीर्थों में नहाना, महाकच्छ का बढ़ाना, गौओं का श्मशान में दुहना, मुर्दे का धड़ जलाना तथा देवताओं के उपलक्ष में रात भर जागना आदि काम किये जायँ। पशुओं की बीमारी के फैलने पर परिवार के देवताओं की पूजा तथा पशुओं के ऊपर से धूप बत्ती उतारी जाय।

दुर्भिक्ष—दुर्भिक्ष के समय में राजा अनाज तथा बीज कम क़ीमत पर बाँटे। लोगों को इधर-उधर देश में भेज दे। नये-नये कठिन कामों को शुरू करे और, लोगों को भोजनाच्छादन दे। मित्र राष्ट्रों का सहारा लेकर अमीरों पर टैक्स बढ़ावे तथा उनका इकट्ठा किया हुआ धन निकाल ले। जिस देश में फ़सल अच्छी हो उसमें अपनी प्रजा को लेकर चला जावे। नदी के किनारे धान, शाक, मूल तथा फलों की खेती करावे। मृग, पशु, पक्षी, शिकारी जन्तु तथा मच्छियों का शिकार शुरू करे।

चूहा—चूहों के उत्पात होने पर बिल्ली तथा नेवलों को छोड़े। जो लोग पकड़कर चूहों को मारें उनपर, १२ पण जुर्माना किया जाय। जो लोग जंगली जानवरों के न होते हुए भी बिना कारण ही कुत्तों को छोड़ रखे उन पर भी पूर्ववत् दण्ड का विधान किया जाय। थूहड़ के दूध में धान को सानकर खेत में छोड़े। ऐन्द्रजालिक तरीक़ों को काम में लावे तथा चूहों के सम्बन्ध में राज्यकर लगावे। सिद्ध तथा तपस्वी लोग शान्तिमय उपायों को करें। पर्वों में मूषक-पूजा की जाय।

टिड्डीदल पत्ती, कीड़े आदि के उत्पातों का उपाय भी इसी प्रकार किया जाय।"

परन्तु उसी समय के लेखक मेगेस्थनीज़ का कहना है कि भारतवर्ष में अकाल पड़ने की बात कहीं सुनी भी नहीं जाती। इससे प्रकट है कि चंद्रगुप्त के राज का बंदोबस्त ऐसा अच्छा था कि उस समय भारतवर्ष में लोग अकाल की पीड़ा नहीं जानते थे। इस सम्बन्ध में चाणक्य का प्रबन्ध बड़ाई के योग्य था।

: ५ :

प्राचीन काल का अन्त

१. चाणक्य के बाद के पाँचसौ वर्ष

अब तक गाँव के बारे में जो कुछ लिखा गया है वह अधिकतर उत्तर भारत के सम्बन्ध मे है। चाणक्य के काल के अन्त मे दक्षिण भारत के आँध्रो और कुशानो का समय आता है जो विक्रम से डेढ़-सौ वर्ष पहले आरम्भ होता है और साढ़े तीन सौ वर्ष पीछे खतम होता है। कुशानो का राज उत्तर मे था और आन्ध्रो का दक्षिण मे था। जो सिलसिला मौर्य्यकाल तक खेती और व्यापार की उन्नति का चला आया था उसके टूट जाने का अभी तक कोई कारण नहीं हुआ था। भारत की बहुत भारी आबादी पहले की तरह गाँवो में रहती थी। गाँव घोपो और पल्लियो मे विभक्त थे। गाँव का मुखिया आँध्रों के राज्य मे सरकारी तौर से रखा जाता था वह झगड़ो का निबटारा भी करता था और राजा के लिए कर भी उगाहता था। अधिकारी लोग जो मालगुज़ारी मुकर्रर कर देते थे वह रकम जब-तक राजा को मिलती जाती थी तबतक गाँव की बातो मे राजा दखल नहीं देता था। धर्मशास्त्र भी यही कहता है कि गाँव सभी तरह से स्वतन्त्र हैं। [१] और महाभारत मे कुल की रीति [२] भी प्रमाण

१. पारस्कर गृह्यसूत्र १--८१३

२. महाभारत आदि पर्व ११३--९

मानी गई है। उस समय भी एक ही परिवार मे बँधे रहने की रीति सबसे अच्छी समझी जाती थी। और अलग होकर रहना निर्बलता का चिन्ह था। इस काल मे राजा अपने को पृथ्वी का ऐसा स्वामी समझता था कि जब उसे ज़रूरत होती थी प्रजा की राय लिये बिना ही भूमि ले लेता था या किसी को दे देता था। तो भी किसान के जीवन की दो बातें उलट-पुलट करने की उसे मनाही थी, (१) उसका घर और (२) उसका खेत।

किसान या वैश्य काम खेती के सिवाय पशुपालन भी करता था। दान देना, पढ़ना, लिखना, व्यापार करना और लेन-देन करना भी उसका कर्तव्य था। उसे बीज बोना भी आना चाहिए था और अच्छे और बुरे खेतो की परख भी होनी चाहिए थी।[1] उस समय ज़रूरत पड़ने पर किसान या वैश्य को सरकार से बोने को बीज भी मिलते थे और बदले मे उपज का चौथाई हिस्सा सरकार लेती थी। सिंचाई के लिए जल का प्रबन्ध भी सरकारी था और ज़रूरत पर तकावी बँटती थी।[2]

बुनाई का काम इस काल मे अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। सूत, ऊन और रेशम के उत्तम से उत्तम कपड़े बनते थे। ऊन के कपड़ो मे एक तरह का कपड़ा चूहो की ऊन से बनाया जाता था जो विशेष रूप से गर्म रहता था। चीनी रेशम के सिवाय तीस प्रकार के

१. "पशूना रक्षण दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथ कुसीदच वैश्यस्य कृषिमेव च मनुः १। ६०
वीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्र दोषगुणस्य च।
मानयोग च जानीयात्तुलायोगाश्च सर्वशः मनुः ९। ३३०

२. महाभारत, शांति पर्व, अ० ८८ श्लो० २६-३०, अ० ८९ श्लोक २३-२४; सभा पर्व अ० ५ श्लो० ६६-७९।

देसी रेशम बरते जाते थे। द्राविड़ कवियों ने कुछ कपड़ों की उपमा "दूध की बाष्प और साँप के केचुल" तक से दी है और बारीकी का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट लिखा है कि इनकी बुनावट इतनी बारीक है कि आँखो को सूत के धागे अलग-अलग दिखाई नहीं पड़ते।

इस काल मे भी पेशो और कलाओ के संघ या पञ्चायतें बनी हुई थीं। प्राचीन लिपियो से जुलाहो, कुम्हारो, तेलियो ठठेरो, उदयान्त्रिकों, चित्रकारों और .मूर्तिकारो की पञ्चायतें अलग-अलग बनी हुई थीं। जो विद्वान् महाभारत की रचना का काल इसी काल के भीतर समझते हैं वे इस अवसर पर महाभारत का भी प्रमाण देकर कहते हैं कि इस समय पञ्चायतो का बड़ा भारी महत्त्व था। महाभारत मे लिखा है कि इन पञ्चायतो से राज की शक्ति को प्रधान रूप से सहारा मिलता था।[1] सरपञ्चो मे फूट डालना या बग़ावत के लिए उभारना, वैरी की हानि करने की मानी हुई रीति थी।[2] जब गन्धर्वों से दुर्योधन हार जाता है तब अपनी राजधानी को लौटना नहीं चाहता। कहता है कि मै पञ्चायत के मुखियों को कैसे मुँह दिखाऊँगा[3]। उस समय पञ्चायत की रीतियाँ और नीतियाँ धर्मशास्त्र की तरह मानी जाती थीं।[4] अपनी पञ्चायत के

१. आश्रमवासिक पर्व, ७। ७-९

२. शांति पर्व ५९। ४९, १९१। ६४

३. ब्राह्मणाः श्रेणिमुख्याश्च तथोदासीन वृत्तयः।
कि मां वक्ष्यति किम् चापि प्रतिवक्ष्यामि नानहम्।
वनपर्व २४८। १६

४. जातिजानपदान्धर्मान्श्रेणी धर्मांश्च धर्मवित्
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ मनुः ८। ४१

सामने बचन देकर जा तोड़ता था उसे राजा देश निकाले का दण्ड देता था। और पंचायत के विरुद्ध पाप करनेवाले के लिए कोई प्रायश्चित्त न था। ऐसे कडे नियमो के होते कला और कारीगरो मे ऊँची से ऊँची दशा को पहुँचना जरूरी था। इन्हीं पेशेवालो की, धीरे-धीरे जातियाँ बन गई और उस समय की पञ्चायतें आज भी जातियो की पञ्चायतें बनी हुई हैं। मनुस्मृति मे लिखा है कि राजा को चाहिए कि वैश्यो और शूद्रो से उनके कर्तव्यो का पालन करावे। अगर ये दोनो जातियाँ अपने-अपने कर्तव्यो का पालन न करेंगी तो ससार की व्यवस्था ही नष्ट हो जायगी।[१] उस समय वर्ण धर्म की रक्षा बड़े महत्व की बात समझी जाती थी। नासिक की गुफा के शिला-लेख मे राजा गौतमीपुत्र बालश्री बडे गर्व के साथ कहता है कि हम ने चारो वर्ण के एक-दूसरे मे मिलकर गड़बड करने मे रुकावट डाली है। इस प्रथा को बन्द कर दिया है।

इस काल मे दासो के पास कोई सम्पत्ति न होती थी। वह मजूरी के रूप मे ही कर देता था। शूद्रो का यही कर्तव्य था कि वे विशेष रूप से किसानो की सेवा करें।[२] बाकी दशा दासो की वही थी जो पिछले अध्याय मे लिख आये हैं। एक बात इस काल की बड़े मार्के की है कि किसान लोग शूद्रो से अर्थात् मजूरो से लगभग मिलते जारहे थे। मजूर बढ़ते-बढ़ते चरवाहे से गोपालक बन जाता था। बनिये की नौकरी करते-करते आप बनिज करने लग जाता था। बहुत दिनो का किसान का मजूर इनाम मे या मजूरी मे माफी खेत

१. वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत्।
तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत्। मनुः ८। ४१८

२ महाभारत १२। ६०। ३७, १। १००। १

पाजाता था। इस तरह मजूरी की जाति का आदम बनिया, ग्वाला या खेतिहर हो जाता था। महाभारत मे लिखा है कि छः गायो को चरानेवाला एक गाय का सारा दूध पाने का अधिकारी है और सौ गायें चराता हो तो नित्य के दूध के सिवाय बरस के अन्त मे एक जोड़ी गाय बैल की मिलती थी। किसान के मजूर को मजूरी मे उपज का सातवाँ भाग मिलता था। इस तरह मजूर जाति के लोग भी किसान बनते गये। ब्राह्मण और क्षत्रिय वैश्य तक उतर सकते थे। परन्तु शूद्र नही हो सकते थे। इस तरह तीनो वर्णों के लोग धीरे धीरे किसान होते गये और किसानो की गिनती बढ़ती गई।[1]

मनुस्मृति मे राजा को अनाज के ऊपर छठा भाग, पेड़, माँस, मधु, घी, कन्दमूल औषधि, मसाले, फल और फूल पर भी छठा भाग, पशु पर पाँचवाँ भाग कर राजा को मिलता था।[2] महाभारत मे साफ लिखा है कि कर जरूर लगाये जाने चाहिए। इसका कारण यह है

१. महाभारत १२।६०।२४, २।५।५४, २।६१।२०

२ पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा॥ ७।१३०
आददीताथ षड्भाग द्रुमांसमधुसर्पिषाम्।
गन्धौषधिरसाना च पुष्पमूलफलस्य च। ७।१३१
पत्रशाकतृणाना च चर्मणा वैदलस्य च।
मृण्मयाना च भाण्डाना सर्वस्याश्ममयस्य च॥ ७।१३२
आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः।
दशम द्वादश वापि सता धर्ममनुस्मरन् ८।३३
धान्येऽष्टम विशाँ शुल्क विंश कार्षापणावरम्।
कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा मनुः १०।१२०

कि प्रजा की रक्षा की जाती है और रक्षा मे खर्च लगता है। परन्तु कर बहुत हलका लगाना चाहिए। सभी किसानो से और गॉव के सभी लोगो से कर रुपये पैसे के रूप मे नहीं लिया जाता था। किसान अनाज के रूप मे देता था, व्यापारी अपने व्यापार की वस्तु के रूप मे देता था और मजूर और कारीगर अपने काम के रूप मे देते थे। केवल शहर के लोग रुपये पैसे के रूप मे देते थे। जो चीजें जीवन के लिए अत्यन्त जरूरी थीं उनपर कर नहीं लगता था।

धन पैदा करने के सात साधन बताये गये है। उनमे साहूकारी भी है, परिश्रम भी है और बनिज भी है। साहूकारी और बनिज तो धन के साधन है ही, परन्तु परिश्रम जो अलग साधन दिखाया गया है उसमे खेती-बारी और कारीगरी मुख्य है।[१] सीधी-सादी मजूरी से तो आज कोई धनी नहीं हो सकता। परन्तु मनुस्मृति मे केवल परिश्रम का उल्लेख करने से हम यह कह सकते है कि शायद उस समय मजूरी बहुत अच्छी मिलती थी और चीजें सस्ती थीं इसलिए मजूर भी धनवान हो सकता था।

सूद, कर, व्यापार और मजूरी इन सबके सम्बन्ध मे विस्तार से जो नियम दिये गये हैं उनसे यह पता चलता है कि भारत मे इस काल मे आर्थिक संगठन जितना उत्तम था उससे अधिक अच्छा हो नहीं सकता। पेशेवर और कारीगर बड़े चतुर और दक्ष देख पड़ते हैं। उस समय का जीवन बड़ा सभ्य और ऊँचा देख पड़ता है। भाँति-भाँति के अनाज, मसाले, फल-फूल तरकारियाँ जो काम आती थीं, ऊँचे दर्जे की खेती की गवाही देती है। भारत का उस समय का

१. सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः।
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥ मनुः १०।११५

जगद्व्यापी व्यापार वाणिज्य की उत्तम अवस्था बताता है। उस समय की अद्भुत और अपूर्व कारीगरी और कला बहुत ऊँची उन्नति की साक्षी है। सभी घरों में सोना, चांदी, रत्न, गहने और रेशमी कपड़ों के होने की चर्चा है।[1]

७. गुप्तकाल

इसके बाद गुप्तों का समय आता है। गुप्तों के समय में भारतवर्ष के बाहर भी भारतीय लोग जाकर बसे। बंगाल से पूरब बर्मा में जाकर भारतीयों ने बस्तियाँ बसाईं और खेतीबारी करने लगे। इससे पहले के काल में भी पता चलता है कि भारत के दक्षिण के हिन्द महासागर में पच्छिम से पूरब तक फैले हुए अनेक टापुओं में बड़े-बड़े जहाजों पर भारत के व्यापारी आया-जाया करते थे और बहुत से लोग जाकर वहीं बस भी गये थे और अपनी संस्कृति का प्रचार भी वहाँ कर रक्खा था। परन्तु जहाँ-जहाँ भारतीय गये और बसे, वहाँ उनका मुख्य कारबार खेती का ही था। और अपनी मातृभूमि में तो सतजुग से गाँव में रहना और खेती बारी करना उनकी विशेषता थी। युग और राज के बदलने से कभी तो राजा का अधिकार कम हो जाता था और कभी बढ़ जाता था। गाँव में उपज के बढ़ जाने से उसे दूर-दूर पहुँचाने के लिए व्यापार का सिलसिला बढ़ाया गया था और धीरे-धीरे व्यापारियों के केन्द्र बनते

१ "तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च।
भस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः॥ मनुः ५।१११
निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुद्ध्यति।
अब्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम्॥ मनुः ५।११२

गये। यही केन्द्र नगर थे और इन्ही नगरों मे प्रजा की और प्रजा की सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए राजधानियाँ बन गई थीं। ये शहर धीरे-धीरे बहुत बढ़ गये और बलवान राजाओ ने छोटे-छोटे राजाओं को अपने बस मे करके अपने अधिकार दूर-दूर तक फैला लिये। इस तरह के राजाओ मे मौर्य्यकाल के राजा बढ़े-चढ़े थे। गुप्तकाल के राजा उनसे भी ज्यादा बढ़े-चढ़े निकले। पर उन्होंने एक बड़ा महत्व का काम भी किया। बाहरी विदेशी जातियो ने भारत पर हमले किये थे और भारत पर अधिकार कर लिया था। अनेक लड़ाइयाँ हुई। गुप्तो ने उन्हे परास्त किया और भारत को भारतीयों के हाथ मे रक्खा। गुप्तो के समय मे व्यापार बहुत बढ़ गया और शहरों को बड़ा लाभ हुआ तो भी भारत की बहुत भारी आबादी गॉवो मे ही रहती थी और खेती-बारी ही उनका खास धन्धा था। वे लोग कुओ से, नहरों से, तालाबो से और गढ्ढो से पानी लेकर सिचाई करते थे। उस समय जल संचय के लिए 'निपान' अर्थात भारी-भारी जलाशय हुआ करते थे। यह नियम था कि प्रजा जब कोई नया धन्धा उठावे या नई ज़मीन जोते, बोवे या नहर, तालाब कुएँ खोदे और यह सब कुछ अपने काम के लिए करे तो जबतक खर्च का दूना लाभ न होने लगे तबतक राजा उनसे कुछ न माँगे। राजा इस तरह किसान से कर वसूल करे कि किसान नष्ट न होने पावे। जैसे माली फूल चुन लेता है परन्तु पेड़ की पूरी रक्षा करता है उसी तरह राजा भी बरते। राजा उस कोयलेवाले की तरह न बरते जो कोयला लेने के लिए पेड़ को जला डालता है।[1]

१ शुक्रनीतिसार ४।४।८१-११२, १२४-१२७, ४।५।१४१ और २४२-४, २२२-२३,

जंगल से उदुम्बर, अश्वत्थ, इमली, चंदन, वट, कदम्ब, अशोक, बकुल, आम, पुन्नाग, चम्पक, सरल, अनार, नीम, ताल, तमाल, लिकुच, नारियल, केला आदि के फल मिलते थे। खदिर, सागवान, साल, अर्जुन, शमी आदि बड़े-बड़े पेड़ों की भी चर्चा है। रमनो और जंगलो के अध्यक्ष भी हुआ करते थे जिन्हे फल-फूल के जमने और विकसने का पूरा हाल मालूम होता था। वे पेड़ों का लगाना और पौधो का पालन पोषण करना खूब जानते थे और औषधियों का अच्छा ज्ञान रखते थे।[१]

कलाओ का भी अच्छा विकास हुआ था। शुक्राचार्य्य ने तो चौसठ कलाओ का वर्णन किया है परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि शुक्रनीतिकार के समय मे ही ये चौसठो कलायें चली थीं। उन्होने केवल सूची तैयार की थी जिससे यह पता लगता है कि बहुत से ऐसे काम भी उस समय होते थे जिन्हे लोग आजकल बिलकुल नई बात समझते हैं। अर्क खींचना, औपधियाँ तैयार करना, धातुओ का विश्लेपण, धातुओ का मिश्रण, नमक का धन्धा, पानी को पम्प करना, चमड़े को सिझाना इत्यादि काम आज से कम से कम डेढ़ हज़ार बरस से पहले हुआ करते थे। हम इस जगह कताई बुनाई की तो चर्चा ही नहीं करते, जो न केवल देशव्यापक काम था बल्कि जिसमे सारे संसार से भारतवर्ष की विशेपता थी। शुक्राचार्य ने ऊन और रेशम के कपड़ो का केवल ज़िक्र ही नहीं किया है बल्कि इनके धोने और साफ़ करने की विधियाँ भी बताई हैं और याज्ञवल्क्य ने तो रुई से बने हुए काग़ज़ की भी चर्चा की है।[२]

१. शुक्रनीतिसार ४ । ५ । ९५–१०२, ११५–१२२; २ । ३२०–३२४

२. शुक्रनीतिसार ४ । ३ । १ । १८०

जो गाँव समुद्र के किनारे थे उन गाँवों में अधिकांश मरजीवे रहते थे और समुद्र से मोती, मूँगे, सीप आदि निकालने का काम बहुत ज़ोरों से होता था। सीपों के सिवाय मछलियों, सीपों, शंखों और बाँसों से भी मोती मिलते थे। सबसे अधिक सीपों से मिलते थे।[१] लङ्का के रहनेवाले नकली मोती भी बनाया करते थे। उन दिनों साधारण लोग इतने सुखी थे कि सोना, चाँदी और रत्नों के गहने पहनने का आम रिवाज था। इससे यह भी पता चलता है कि उस समय गाँव-गाँव मे बड़े होशियार सुनार होंगे।[२]

बँसफोर बाँस की चीज़ों के बनाने मे ऐसे कुशल थे कि उत्सव के अवसरों पर शुद्ध बाँस के तने हुए चार पहियों के रथ तैयार करते थे जिनमे तीन-तीन गुम्बद होते थे और चौदह-पन्द्रह हाथ तक ऊँचे होते थे। इन रथों को वे बड़ी सुन्दरता से बनाते, रगते और सजाते थे। इन पर बड़ी अच्छी चित्रकारी भी करते थे।[३]

उस समय भी पंचायतें बनी हुई थीं। किसानों की, कारीगरों की, कलावन्तों की, साहूकारों की, नटों की और संन्यासियों तक की पचायतें संगठित थीं। इन पंचायतों के नियम बँधे हुए थे और वह सरकारी कानून के अन्तर्गत समझे जाते थे; और उनके अधिकार और उनके नियम उस समय की सरकार भी मानती थी। जो लोग पंचायत के सदस्यों मे फूट डालने के अपराधी होते थे उन्हें

१ शुक्रनीतिसार ४। २। ११७-११८

२. मृच्छकटिक नाटक और गरुड पुराण में अनेक अंशों से इन बातों का प्रमाण मिलता है।

३. बील, फाहियान — (अंग्रेजी) पृष्ठ ५६, ५८

४. शुक्रनीतिसार ४।५।३५—३६

सरकार की ओर से बड़ा कड़ा दंड मिलता था। "क्योंकि यदि ऐसो को दंड न दिया गया तो यह फूट की बीमारी महामारी की तरह महा भयानक रीति से फैल जायगी।"[1] याज्ञवल्क्य संहिता में लिखा है कि जो कोई पंचायत की चोरी करे या वचन तोड़े तो उसे देश निकाल दिया जाय और उसकी सारी जायदाद ज़ब्त कर ली जाय।[2] पचायतों के पास पंचायती जायदाद हुआ करती थी, और पंचायत के संगठन के नियम विस्तार से बने हुए थे। परन्तु नियमों के बनाने मे यह बात बराबर ध्यान मे रक्खी जाती थी कि उस समय के कानून मे और धर्मशास्त्र के नियमों से किसी तरह विरोध न पड़े। पचायतों की नियमावली का नाम 'समय' था और पंचायत के काम करनेवाले 'कार्य्य चिन्तक' कहलाते थे। पंचायत मे जो लोग ईमानदार और पवित्र आचरण के समझे जाते थे वही कार्यचिन्तक बनाये जाते थे। और वही पचायत के नाम से सरकारी दरबारो मे भी काम करते थे। सरकार मे उनकी बड़ी इज़्ज़त की जाती थी। पचायत के सदस्यों पर भी उनका अधिकार था। उनके फैसले जो न माने उन्हे वे दंड दे सकते थे। परन्तु वे भी पंचायत के नियमों से इतने बँधे होते थे कि जब वे आप चूक जाते थे या उनमें और सदस्यों मे जब झगड़ा पड जाता था तब राजा ठीक निर्णय करता था।[3] परन्तु पचायत को पूरा अधिकार था कि यदि कार्य-

१. नारदस्मृति १०।६

२. याज्ञवल्क्य संहिता २।१८७—

३. नारद स्मृति १०।१, म म. मित्रमिश्र विरचित वीरमित्रोदय (जीवानन्द विद्यासागर सम्पादित) पृ० ४२८

याज्ञवल्क्य ने तो मुखिया को भी दंड दिलाया है—

चिन्तकों से कोई भारी अपराध हो जाय या वे फूट डालनेवाले ठहर जायँ या वे पंचायत का धन नष्ट करें तो उन्हें निकाल बाहर करें और राजा को केवल इस बात की सूचना दे दे। और अगर कोई कार्य चिन्तक इतना प्रभाववाला निकले कि पंचायत उसे निकाल न सके तो मामला राजा तक आता था और राजा दोनों पक्षों की बातें सुनकर निश्चय करता और उचित दण्ड देता था।

पंचायत के होने और उसकी रीति पर काम होने का एक पुराना उदाहरण इन्दौर में मिले हुए स्कन्दगुप्त के एक ताम्रपत्र से मिलता है।[1] इस लिपि में एक जायदाद के दान किये जाने की बात है कि उसके ब्याज से सूर्य देवता की पूजा के लिए मन्दिर में नित्य एक प्रदीप जला करे। सूर्य देवता के मन्दिर में इस काम के लिए एक ब्राह्मण जो जायदाद दान में लिख देता है, उस जायदाद पर तेलियों की उस पञ्चायत का कब्ज़ा सदा के लिए कर दिया जिसका सरपंच इन्द्रपुर का रहनेवाला जीवन्त है, और इस जायदाद पर उस पञ्चायत का कब्ज़ा उस समय तक रहेगा जब तक कि, इस बस्ती से चले जाने पर भी उसमें पूरा एका बना रहे।

और समयों की तरह इस समय भी यही बात प्रचलित थी

साहसी भेदकारी च गणद्रव्यविनाशकः।
अच्छेद्य· सर्व एवैते विख्याप्यैव नृपे भृगु.॥
गण द्रव्य हरेद्यस्तु सविद लंघयेच्च य·।
सर्वस्वहरण कृत्वा त राष्ट्राद्विप्रवासयेत्॥

याज्ञवल्क्य स्मृति. ॥ २।१८७

१ फ्लीट (अंग्रेज़ी में) गुप्त लिपियाँ न० १६ (सम्वत् ५२१ विक्रमीय)

कि बेटा प्रायः अपने बाप का पेशा करता था। इसीसे पेशेवरों की भी जाति बन गई थी। जो अपने बाप दादों का पेशा छोड़ देता था उसे राजा दण्ड भी दे सकता था। परन्तु यह अकारण छोड़ देने वाले की बात थी। बाप दादों के पेशे को छोड़ देने के लिए प्रबल कारण होने पर पेशा छोड़ने से हर्ज भी नहीं समझा जाता था। मन्द-सोर के शिलालेख मे, जो कुमारगुप्त और बन्धुवर्म्मन का लिखा है,[1] यह उल्लेख है कि रेशम बुननेवालों की एक पंचायत पहले लाट पर ठहरी थी, फिर दशपुर मे वहाँ के राजा के गुणों पर मुग्ध होकर चली गई। वहाँ जाकर कुछ लोगों ने धनुर्विद्या सीखी, कुछ धार्मिक जीवन बिताने लगे, कुछ ज्योतिषी हो गये, कुछ कवि होगये, कुछ संन्यासी हो गये और बाकी बाप दादों की तरह रेशम बुनते रहे। इस पंचायत ने सम्वत् ४९२ (विक्रमी सम्वत्) मे दशपुर मे सूर्य का एक बहुत सुन्दर बड़ा मन्दिर बनाया। और छत्तीस बरस बाद जब वह मरम्मत के योग्य हुआ तब उसी पंचायत ने सम्वत् ५२८ वि० मे उसकी पूरी मरम्मत कराई। इस उदाहरण से दो बाते सिद्ध होती है। एक तो यह कि पंचायत मे बँधकर भी लोगों को इतनी आज़ादी थी कि वे अपने मनमाने काम कर सकते थे, अपनी योग्यता बढ़ा सकते थे और अपना पारिवारिक पेशा छोड़ सकते थे। दूसरी बात यह मालूम होती है कि जातियों या पेशों की पंचायतों का संगठन बराबर पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता था और काम करता रहता था। मजूरों का भी ऐसा ही सङ्गठन था और दासों और मजूरों की दशा भी वैसी ही थी जैसी पहले वर्णन की गई है। किसानों की सुख समृद्धि गुप्त काल में भी घटी नहीं थी।

१. फ्लीट (अंग्रेज़ी में) गुप्त लिपियाँ न० १८

: ९ :

पूर्व माध्यमिक काल

१. हर्षकाल और पीछे

गुप्तकाल के बाद ही हर्ष का समय आता है। गुप्त सम्राटो का बड़ा भारी साम्राज्य मध्य एशिया के जगली लुटेरों की चढ़ाई से तहस-नहस हो गया। जिस तरह गुप्त साम्राज्य बरबाद हुआ उसी तरह भारतवर्ष के भारी व्यापार को भी धक्का पहुँचा। परन्तु गाँव और गाँव के खेती आदि व्यापार इन धक्कों से भी नष्ट नहीं होते थे। यही सारी मुसीबतों मे बेड़ा पार लगाते थे। हर्ष के समय मे भी खेती-बारी के सम्बन्ध के सारे काम बराबर ज्यो के त्यो होते रहे। इस समय पच्छाँह के देशों मे क्या किसानी के काम मे, और क्या व्यापार मे, और क्या सामुद्रिक यात्राओ मे जाटो का बलोबाला रहा। भारतवर्ष मे, जैसे सदा से होता आया, जन समुदाय गाँवो मे ही रहता था और सबसे बड़ा कारबार खेती का था। गाँव-गाँव खण्डसालें चलती थी, चरखे और करघे चलते थे, गाँव मे सभी जाति और पेशे के मनुष्य रहते थे, सब तरह की कारीगरी और कला पहले की तरह बराबर समुन्नत अवस्था मे थी। कश्मीर अपने चावलों और केशर के लिए प्रसिद्ध हो गया था। मगध भी अपने चावलो के लिए मशहूर था। ह्युएनत्सांग ने लिखा है कि बहुत भारी अमीर लोग मगध के ही चावल खाते थे।[१] लिखा है कि मथुरा से १००

१. बील—ह्युएनत्साग, (अंग्रेज़ी) जिल्द २, पृ० ८२

मील पच्छिम पार्यात्र नाम के स्थान मे इस तरह का चावल होता था जो साठ दिनों मे ही पकता था (इसे साठी का चावल कहते है और बरसात मे अब भी साठ दिन मे ही पकता है) ह्यूएनत्साग ने लिखा है कि लोगों का साधारण भोजन घी, दूध, मक्खन, मलाई, खाँड, मिश्री, रोटियाँ, तेल आदि था। और जो मांस खाते थे वे हरिण का मांस और ताज़ी मछलियाँ खाते थे। फलो मे, उसने लिखा है कि, इतने है कि नाम नहीं गिने जा सकते। आम्र; कपित्थ, आमलकी, मधूक, भद्रआमला, टिंडक, उदुम्बर, मोचा, पस्य, नारियल, खजूर, लुकाट, नासपाती, बेर, अनन्नास, अंगूर इत्यादि-इत्यादि अनेक नाम गिनाये है। लिखा है कि कश्मीर फल-फूल के लिए मशहूर था।[1] शिक्षा के विषय मे लिखा है कि सात और सात वरस से अधिक के लड़कों को पाँच विद्याये सिखाई जाती थीं जिनमे से दूसरी विद्या शिल्पस्थान विद्या थी, जिसमे कलाओ और यत्रो का वर्णन है। कपड़ों के बारे मे ह्युएनत्सांग ने भारत के कारीगरों की बड़ी प्रशसा की है। सूती, रेशमी, छालटी, कम्बल और कराल इन पांच प्रकार के वस्त्रों का वर्णन किया है। इनमे से कम्बल से अभिप्राय था बहुत बारीक ऊनी कपड़े से जो बकरी के बहुत बारीक रोयें से बनते थे। कराल एक जंगली जानवर के बारीक रोयें के बने कपड़े होते थे। ऐसे कपड़े अमीरों की फरमाइश पर ही बनते थे। बरोच या महाकच्छ की रूई सदा की तरह हर्ष के समय मे भी मशहूर थी, उसके बारीक कपड़े भी मशहूर थे। बुनाई की कला किस ऊँचे दर्जे को पहुँच चुकी थी इस बात का थोड़ा सा अन्दाज़ा बाण द्वारा वर्णित राज्यश्री के विवाह प्रकरण से हो सकता है। लिखा है कि "महल क्षौम, बादर, दुकूल, लाला तन्तुज, अंशुक और नैत्र से सुशोभित था

१. बील—ह्यूएनत्साग, (अंग्रेजी) जिल्द २, पृ० २३२

जो साँप के केंचुल की तरह चमकते थे और अकठोर केले के पेड़ के भीतर के छिलके की तरह कोमल थे और इतने हलके थे कि साँस से उड़ जा सकते थे। छूने से ही उनका पता लगता था। चारों ओर हज़ारों इन्द्रधनुष की तरह चमक रहे थे।[1] क्षौम छाल के कपड़ों को कहते हैं, बादर रुई के कपड़ो को कहते है, लाला तन्तुज उस कौशेय वस्त्र को कहते है जिसके तन्तु कीड़े की लाला या राल से बनते हैं। नैत्र किसी वृक्ष विशेष की जड़ के रेशो से बने वस्त्र को कहते हैं और दुकूल गरम, महीन, रेशमी कपड़े होते थे और अंशुक वह रेशमी कपड़े थे जिनके धागे किरणों की तरह बारीक और चमकीले होते थे। कपड़ा अनेक प्रकार के रेशो और तन्तुओं से बनता था। आज जिनका हमे पता भी नहीं है और वह भी इतना बारीक बनता था कि छूने से ही पता लगता था कि कपड़ा है। उस बारीकी को मिल के कपड़े क्या पहुँचेगे! बुनने की कला इस हद को पहुँच चुकी थी तो साथ ही कातने की कला भी उसी हद तक पहुँच चुकी थी कि सूत के तार मुश्किल से देख पडते थे।

बृहस्पति संहिता से पता चलता है कि गाँववाले मिलकर पचायत बनाते थे, या जब कारीगर अपनी पञ्चायत स्थापित करते थे तो एक पञ्चायतनामा लिख लेते थे, जिसमे कोई खटके की बात न रहे और सब लोग अपने कर्तव्यों मे बंधे रहे। जब कभी चोरो लुटेरो या बेकायदा सेनाओ का डर होता तो उसे सार्वजनिक विपत्ति समझा

१ हर्षचरित, चौथा उच्छ्वास, राज्यश्री के विवाह प्रकरण से।
"क्षौमैश्च बादरैश्च दुकूलैश्च लालातन्तुजैश्चांशुकैश्च नेत्रैश्च निर्मोकनिभैरकठोररम्भागर्भकोमलैर्निःश्वासहार्यैः स्पर्शानुमेयैर्वासोभिः सर्वतः स्फुरद्भिरिन्द्रायुधसहस्रैरिव संछादितं।

जाता था और उस जोखिम का मुकाबला सब मिलकर करते थे।[१] जब कोई आम फायदे का काम किया जाता था, धर्मशाला, बावड़ी, कुए, मन्दिर, बाग बगीचे आदि सबके लाभ के लिए बनवाने होते थे या कोई सार्वजनिक यज्ञ करना होता था तब पञ्चायत या गाँव की सभा ही इन कामो को सम्पन्न करती थी।[२] पञ्चायत की स्थापना के आरम्भ मे पहले परस्पर विश्वास दृढ़ करके किसी पवित्र विधि या लिखा-पढ़ी या मध्यस्थ से निश्चय कराकर पञ्चायत का काम आरम्भ किया जाता था। पञ्चायत का काम करनेवाले उसके श्रेष्टी और दो या तीन या पाँच और सहायक होते थे।[३] जो लोग इस तरह कार्यचिन्तक चुने जाते थे वे वेद के धर्म को और अपने कर्तव्य को जानते थे, अच्छे कुल के होते थे और सब तरह के कारोबार जानते थे। पञ्चायतो के सम्बन्ध मे प्राय: वही नियम अब भी वरते जाते थे। जिनकी चर्चा हम पहले कर आये है। उनको यहाँ दुहराना व्यर्थ होगा। इस काल मे कारीगरों की ऐसी कम्पनियाँ भी बनी हुई थीं जिनमे पूँजी के बदले सदस्यो के कारीगरी के काम लगे हुए थे। बेगारी की चाल उस समय न थी। जरूरत पड़ने पर सरकार या पञ्चायत काम भी लेती थी और पूरी मजूरी देती थी।

ह्युएनत्सांग ने भारतवर्ष को बहुत समृद्ध और सुखी पाया। यहाँ पर सब तरह के लोगों मे धरती का ठीक-ठीक रीति से बँटवारा था खेती से थोड़े खर्च मे बहुत-सा अनाज पैदा होता था और देश की

१. बृहस्पति स्मृति १७।५-६

२ बृहस्पति संहिता १७।११-१२

३ बृहस्पति संहिता १७।७ १७।१७ १७।९

बची हुइ पैदावार व्यापारी लोग देश के बाहर ले जाते थे और बदले मे सोना, रत्न और उत्तम-उत्तम वस्तुयें लाते थे। संसार के सभी सभ्य भागो से व्यापार बड़े सुभीते से जारी था। सोने-चाँदी की अटूट धारा व्यापार के द्वारा भारत मे उमड़ी चली आती थी। इसी धन की प्रसिद्धि से मुसलमान कासिम ने सिन्धु देश पर चढ़ाई की और उसे अपने अधीन कर लिया। मुसलिम अधिकार का यही आरम्भ था और विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी मे इसी धन के लोभ से महमूद गजनवी के आक्रमण पर आक्रमण हुए और उसने लूट-लूट कर खजाने भरे। उसके बाद शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने तो विदेशी लुटेरो के लिए खैबर का मार्ग ही खोल दिया और भारत मे मुसलिम साम्राज्य की नींव डाली। सैकड़ो बरस बाद भारत की इसी धन की प्रसिद्धि ने कोलम्बस को अमेरिका भेजा और पाताल का पता लगवाया, और वास्कोडीगामा से उत्तमाशा अन्तरीप पार कराया और खैबर की राह से लाखो तातारियों, पठानो और मुगलो से भारत पर आक्रमण कराया।

२. मुसलिम चढ़ाई के आरंभ तक

विक्रम की लगभग दसवीं शताब्दी मे भारतवर्ष अनेक राज्यो में बँटा था उनका राज्य प्रजा के लिए बड़ा सुखदायक था। उनको कर बहुत हलका देना पड़ता था, लगान बहुत कम देना पड़ता था क्योकि खेती के लिए धरती बहुत थी और प्रजा को किसी तरह का कष्ट न था। राजा लोग आपस मे लड़ते थे, एक दूसरे पर विजय कर लेते थे परन्तु प्रजा को बैरी राजा से भी कोई कष्ट न मिलता था। किसान शान्ति से हल जोत रहा है, खेती कर रहा है और उसके

पड़ोस मे घोर युद्ध हो रहा है। युद्ध करनेवाले खेती को कोई हानि न पहुँचाते थे। व्यापारी अपना माल लादकर देश-विदेश मे बेचने को लेजाता था। युद्ध करनेवाले सैनिक उनको नहीं छूते थे। सिन्ध के सिवाय और कहीं भी अहिन्दू राज न था। कन्नौज, मालखेड़ और मुंगेर ये तीन बड़े बड़े साम्राज्य थे, पर ये अपने-अपने स्थान के साम्राज्य थे। ऐसा भी न था कि राजपूतो पर मराठों या मराठो पर बंगालियो का राज हो। जहाँ कहीं भारत के और किसी प्रान्त का दूसरे प्रान्त पर अगर कोई आधिपत्य भी था तो वह इतना थोड़ा था कि विदेशी राज-सा प्रतीत न होता था। किसानों की रक्षा और शान्त जीवन ने उन्हे राज के मामलो से इतना निश्चिन्त कर दिया था कि उनकी खेती-बारी अगर आज एक राजा के अधीन है और कल दूसरे राज्य मे चली जाती है तो इस हेर-फेर से उनके कारबार मे कोई बाधा नहीं पड़ती थी। उनके भूमिकर और ग्राम-स्वराज्य मे कोई अन्तर नहीं पड़ता था। इस कारण देश मे क्रान्ति भी होजाय और राज्य कितना ही बदल जाय वे इस बात से बिलकुल बेपरवाह रहने लगे। उनकी बान पड़ गई कि कोई भी राज हो उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते थे। अलबेरूनी ने लिखा है कि राजा ज्यादा से ज्यादा छठा भाग कर लेता था। खेतो से, मजूरो से, कारीगरो से, व्यापारियों से सबसे उनकी आमदनी पर कर लिया जाता था। केवल ब्राह्मणों से कर नही लिया जाता था।

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक यहाँ के गाँवो का जैसा संस्थान था, पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने कुछ अधिक विस्तार से दिया है। हम उसे ज्यों का त्यों उद्धृत करते है:—

१ मध्यकालीन भारतीय संस्कृति पृ० १५३—१५५।

"शासन की सुविधा के लिए देश भिन्न-भिन्न भागों में बँटा हुआ था। मुख्य-विभाग भुक्ति (प्रांत), विषय (जिला) और ग्राम थे। सबसे मुख्य संस्था ग्राम संस्था थी। बहुत प्राचीन काल से भारतवर्ष में ग्राम संस्थाओं का प्रचार था। ग्राम के लिए वहाँ की पंचायत ही सब कुछ कार्य करती थी। केंद्रीय सरकार का उसीसे संबंध रहता था। ये ग्राम संस्थायें एक छोटा सा प्रजातंत्र थीं, इनमें प्रजा का अधिकार था। मुख्य सरकार के अधीन होते हुए भी ये एक प्रकार से स्वतंत्र थीं।

प्राचीन तामिल इतिहास से उस समय की शासन-पद्धति का विस्तृत परिचय मिलता है, परन्तु हम स्थानाभाव से संक्षिप्त वर्णन ही देंगे। शासन कार्य में राजा को सहायता देने के लिए पाँच समितियाँ होती थीं। इनके अतिरिक्त जिलों में तीन सभायें होती थीं। ब्राह्मण सभा में सब ब्राह्मण सम्मिलित होते थे। व्यपारियों की सभा व्यापारादि का प्रबंध करती थी। चोल राजराज (प्रथम) के शिलालेख से १२० गाँवों में ग्राम-सभाओं के होने का पता लगता है। इन सभाओं के अधिवेशन के लिए बड़े-बडे भवन होते थे, जैसे तंजोर आदि में बने हुए हैं। साधारण गाँवों में बडे-बड़े वटवृक्षों के नीचे सभाओं के अधिवेशन होते थे। ग्राम-सभाओं के दो रूप—विचार-सभा और शासन-सभा—रहते थे। संपूर्ण सभा के सभ्य कई समितियों में विभक्त कर दिये जाते थे। कृषि और उद्यान सिंचाई, व्यापार, मंदिर, दान आदि के लिए भिन्न-भिन्न समितियाँ थीं। एक समय एक तालाब में पानी अधिक आने के कारण ग्राम को हानि पहुँचने की सम्भावना होने पर ग्राम सभा ने तालाब-समिति को इसका सुधार करने के लिए बिना सूद रुपया दिया और कहा कि इसका सूद मंदिर-समिति को दिया जाय। यदि कोई किसान कुछ वर्ष तक कर न देता था, तो उससे भूमि छीन

की जाती थी। ऐसी ज़मीन फिर नीलाम कर दी जाती थी। भूमि बेचने या ख़रीदने पर ग्राम-सभा उसका पूरा विवरण तथा दस्तावेज़ अपने पास रखती थी। सारा हिसाब-किताब ताड़पत्रादि पर लिखा जाता था। सिंचाई की तरफ़ विशेष ध्यान दिया जाता था। जल का कोई भी स्रोत व्यर्थ नहीं जाने पाता था। नहरों, तालाबों और कुओं की मरम्मत समय-समय पर होती थी। आय-व्यय के रजिस्टरों का निरीक्षण करने के लिए राज्य की ओर से अधिकारी नियुक्त किये जाते थे।

"चोल राजा परांतक के समय के शिलालेख से ग्राम-संस्थाओं की निर्माण-पद्धति पर बहुत प्रकाश पड़ता है। उसमें ग्राम सभा के सभ्यों की योग्यता अयोग्यता सम्बन्धी नियम, सभाओं के अधिवेशन के नियम, सभ्यों के सार्वजनिक चुनाव के नियम, उपसमितियों का निर्माण, आय व्यय के परीक्षकों की नियुक्ति आदि पर विचार किया गया है। चुनाव सार्वजनिक होता था, इसकी विधि यह होती थी कि लोग ठीकरियों पर उम्मीदवार का नाम लिखकर घड़े में डाल देते थे, सबके सामने वह घड़ा खोलकर उम्मीदवार के मत गिने जाते थे और अधिक मत से कोई उम्मीदवार चुना जाता था।

"इन संस्थाओं का भारत की जनता पर जो सबसे अधिक व्यापक प्रभाव पड़ा वह यह था कि वह ऊपर के राजकीय कार्यों से उदासीन रहने लगी। राज्य में चाहे कितने बड़े बड़े परिवर्तन हो जायँ, परन्तु पंचायतों के वैसे ही रहने से साधारण जनता में कोई परिवर्तन नहीं दीखता था जन साधारण को परतंत्रता का कटु अनुभव कभी नहीं होता था। इतने विशाल देश के भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए यह कठिन भी है कि वे गाँवों तक की सब बातों की तरफ़ ध्यान रख सकें।

मुसलिम चढ़ाई के आरम्भ तक

भारतवर्ष में इतने परिवर्तन हुए, परन्तु किसी ने पंचायतों को [illegible] का प्रयत्न नहीं किया।"

मुगल बादशाह अपने पतनकाल में जब भूमिकर अत्यधिक और बेदर्दी, कड़ाई और पशुता से वसूल करने लगे और ब्रिटिश सरकार ने भी वही नीति बराबर जारी रखी तो वही पचायतें अत्याचार और हृदयहीनता के साथ सहयोग न कर सकीं और अन्ततः टूट गई। पटवारी जमींदार, तहसीलदार उसके शहने, सिपाही सभी मनमानी करने लगे। प्रजा की सुननेवाला कोई न रह गया। अदालतें, वकील, मुख्तार, पेशकार, मुंशी, मुहर्रिर, दलाल, सबके सब किसान को बेतरह चूसने लगे और वह बेचारा बरबाद हो गया।

परमाध्यमिक काल

१. मुग़लों से पहले

तारीख फीरोज़शाही मे बरनी ने अलाउद्दीन खिलजी के राज मे उन भावों का विवरण दिया है, जिन पर कि उस समय के अनाज, तेल, घी, नमक आदि बादशाही हुक्म से बिकते थे। उसने जो भाव दिये है उनको आजकल के संयुक्तप्रान्त के माने हुए तौल मे नीचे दिया जाता है।

गेहूँ	एक पैसे में	दो सेर
जौ	,,	साढ़े तीन सेर
धान	,,	तीन सेर
खड़ी माश	,,	तीन सेर
चने की दाल	,,	तीन सेर
मोठ	,,	एक पसेरी
खांड	,,	साढ़े चार छटांक
गुड़	,,	अठारह छटाँक
मक्खन	,,	साढ़े चौदह छटाँक
तिल्ली का तेल	,,	साढ़े सत्रह छटाँक
नमक	,,	नौ सेर

यह भाव बादशाह के हुक्म से दिल्ली के लिए मुकर्रिर हो गये थे। कोई एक धेला भी नहीं बढ़ा सकता था। यह इतना सस्ता है

कि जल्दी विश्वास नहीं होता; पर उस समय खाने-पीने की सब चीजें इतनी सस्ती थीं कि इस भाव से लोग सन्तुष्ट थे। यह भाव उस समय सस्ते नहीं समझे जाते थे। यह इतने ऊँचे भाव थे कि सूखे के समय में भी दिल्ली मे गल्ला भरा रहता था। भाव महँगा करने के लिए गल्ले की बिक्री रोक लेना या नाज को जमाकर रखना घोर अपराध था जिसके लिए बड़ा दण्ड मिलता था। किसानो को अपना लगान देने के लिए अनाज का एक भाग दे देना पड़ता था। अपने खर्च से ज्यादा बचा हुआ अनाज जहाँ पैदा होता था वही किसानो को बेच देना पड़ता था। कपडे, खाँड, शक्कर, चीनी, घी और तेल सबके भाव बाज़ारों से ठहरा दिये जाते थे। सब व्यौपारियो को चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, ठहराये हुए भाव पर लेना-देना पड़ता था। व्यापारी लोग उसी बाज़ार मे अत्यन्त सस्ता खरीद कर उसके आस-पास अत्यन्त महंगा नहीं बेच सकते थे। इस तरह बादशाहत के अन्दर सब बाज़ार कायदे कानून के अन्दर जकड़े हुए थे। शहन-ए-मण्डी जिस किसी को कायदे के खिलाफ चलते हुए देखता था कोड़े लगाता था। दुधार गाय तीन-चार रुपये मे और बकरी दस-बारह या चौदह पैसो मे मिल जाती थी। कोई दुकान पर जो कम तौलता था तो वजन मे जो कमी होती थी, उसके चूतड़ो का माँस काटकर पूरी की जाती थी। जो दुकानदार ज़रा भी गड़बड़ करता पाया जाता था, लात मारकर बाज़ार से निकाल दिया जाता था। इसका फल यह होता था कि बनिये कुछ ज्यादा ही तौलते थे। बरनी ने इसके चार कारण बताये है। (१) बाजार के कायदों की सख्त पाबन्दी (२) रोकड़ो का कड़ाई से उगाहा जाना। (३) लोगो मे सिक्को का बहुत कम प्रचार (४) कर्मचारियो की निष्पक्षता और ईमानदारी।

फीरोज़शाह के समय मे कर और भी घटा दिया गया। जिन खेतों की सरकारी नहरों से सिंचाई होती थी उनसे पैदावार का दहियक अर्थात पैदावार का दसवाँ भाग लिया जाता था। खाने पहनने की चीज़ें इतनी सस्ती थीं कि अकाल के दिनो मे भी लोग सहज मे विपत्ति काट देते थे। महसूलों और लगानो की कमी से खेती और व्यापार को बहुत लाभ हुआ। शम्स सिराज अफीफ ने नीचे लिखे भाव दिये है—

गेहूँ	एक पैसे में	पौने दो सेर
जौ	,,	साढ़े तीन ,,
और अनाज	,,	,, ,, ,,
दाल	,,	,, ,, ,,
घी	,,	पौने तीन छटांक
चीनी	,,	ढाई ,,

कहते हैं कि उस समय बिना खेती के धरती का एक टुकड़ा नहीं बचा था।

मध्यभारत मे बहमनी राज्यो के समय मे दशा कुछ बुरी न थी। इतिहास से पता चलता है कि जैसा प्राचीन काल से बराबर चला आता था उस समय गाँव-गाँव अपना स्वतन्त्र शासन रखते थे; हरेक गाँव मे पंचायत रहा करती थी जिसका सरपंच उत्तर भारत मे मुखिया या चौधरी कहलाता था और दक्षिण भारत मे अयगर कहलाता था। मुखिया या अयगरो को या तो पंचायत की ओर से खेत मिल जाता था या फसल पर किसान लोग उपज का कुछ अंश दे देते थे। यह अयगर या मुखिया पंचायत की ओर से छोटे-छोटे मुकद्दमे फैसल करते थे, मालगुजारी उगाहते थे। अमन और शान्ति

रखते थे। इन्हीं लोगों के द्वारा राजा और किसान के बीच सम्बन्ध बना रहता था। जान पड़ता है कि यही मुखिया या अयगर काल पाकर जमींदार बन गये। उस समय लगान ज़रूर बढ़ गया था परन्तु जितना बढ़ा हुआ था उस हिसाब से वसूल किया जाना सिद्ध नहीं होता। लगान के सिवाय पचासों तरह के और महसूल मुसलमान बादशाहों ने लगा दिये थे जिनका व्यवहार शहरों से अधिक था। चाहे इन सब उपायों से राज्य की आय बहुत बढ़ जाती रही हो परन्तु पूरा महसूल वसूल होकर शाही ख़ज़ाने तक पहुँचने में सन्देह है। यह बात सचाई से कही जा सकती है कि आमदनी के इन उपायों में मुसलमान बादशाह भी किसान की भलाई का बराबर ख़याल रखा करता था, तो भी किसान से अब बेगार ली जाने लगी। चराई और विवाह का महसूल भी लिया जाने लगा। आज-कल के मोटरावन, हथियावन, नचावन आदि भाँति-भाँति के 'आवनों' का अभी किसीने सपना भी नहीं देखा था। लोगों को चुंगी के रूप में नाज, फल, तरकारी, तेलहन और जानवरों पर भी महसूल देना पड़ता था। शहर में आने का रास्ता एक ही था और फाटक पर पहरा रहता था। इसलिए शहरवाले महसूल से बच नहीं सकते थे।

शुरू-शुरू में जब मुसलमानों ने भारत पर चढाई की तो यहाँ से बहुत-सा धन लूट ले गये। पहले के मुसलमान बादशाहों के विजय की लालसा इतनी रहती थी कि वे बन्दोबस्त की ओर ध्यान नहीं देते थे। देश के भीतर अमन-चैन लाने का काम बलबन ने किया। उसने ठगों और लुटेरों से देश की रक्षा की और उनका दमन किया। मुसलमानों के राज में कहीं-कहीं किसानों की दशा बिगड़

गई थी परन्तु अब किसान शान्ति से खेती करते थे और व्यापारी अपना माल एक देश से दूसरे देश मे बिना लुटे ले जाने लगे। फ़ीरोज़शाह के समय मे जब घोर काल पड़ा तो दिल्ली मे अनाज तीन पैसे सेर तक[1] चढ़ गया। अलाउद्दीन के समय मे शाही भण्डारों और खत्तो मे अनाज रक्खा जाता था और अकाल के समय में सस्ता बिकता था। परन्तु उसके बाद उसके बनाये कानून टूट गये और चीजें मनमाने भाव पर बिकने लगीं। मुहम्मद तुग़लक के समय मे नकली सिक्को ने बहुत नुकसान पहुँचाया। क़ोई दस बरस तक घोर अकाल रहा। दो बरस मे सत्तर लाख रुपये तकावी के लिए किसानो को बाँटे गये। बादशाह ने शाही खत्तों से नाज निकलवाकर बँटवाया और फकीहों और काजियो को हुक्म हुआ कि मुहताजो की फेहरिस्त बनावे। मुहर्रिरों के साथ काज़ी और अमीर गाँव-गाँव घूमकर अकाल-पीड़ितो को आदमी पीछे तीन पाव अनाज बाँटते थे। बड़ी-बड़ी खानकाहे मदद बाँट रही थीं और कुतुबुद्दीन की खानकाह मे जिसमे चार सौ साठ आदमी नौकर थे हजारों आदमी नित्य खिलाये जाते थे। हाथ की कारीगरी को बहुत बढ़ावा मिला। चार सौ रेशम बुननेवाले सरकारी कारख़ाने मे काम करते थे और सब तरह की चीजें तैयार की जाती थीं। वासफ के लिखने से मालूम होता है कि विक्रम की चौदहवीं शताब्दी मे गुजरात एक बड़ा अमीर प्रांत था जिसकी आबादी घनी थी। इसमे सात हज़ार

१. आजकल अच्छी फसलो पर जो भाव होता है उससे उस समय के घोर अकाल का भाव तिगुना-चौगुना सस्ता था। अनाज की भी आज कमी नहीं है, पैसा तो उस समय की अपेक्षा बहुत सस्ता है। परन्तु किसान के पास पैसे कहाँ हैं ?

गॉव और कस्बे थे और लोग धन सम्पत्ति मे रॅजे-पुॅजे थे। खेती से पैदावार बड़ी अच्छी होती थी। अगूरो की दो फसल हुआ करती थी। धरती इतनी उपजाऊ थी कि कपास की शाखाये झाड़ की तरह फैल जाया करती थी और एक बार के लगाने मे वही पौधे कई साल तक बराबर कपास की ढोड़ियाँ दिया करते थे। मारकोपोलो ने तो लिखा है कि कपास की खेती सारे भारत मे फैली हुई थी और कपास के पेड़ छः-छः हाथ ऊॅचे होते थे, और बीस-बीस बरस तक कपास होती थीं। मिर्चे, अदरक और नील बहुतायत से होती थीं। लाल और नीले चमड़े की चटाइयाँ बनती थीं जिसमे कि चाँदी और सोने के काम के पत्ती और पशुओं के चित्र कढ़े हुए होते थे। मारकोपोलो ने यहाँ के निवासियो को सुखी और समृद्ध पाया। व्यापार मे कुशल और कारीगरी मे दक्ष देखा।

चौदहवीं शताब्दी मे बंगाल को इब्नबतूता ने बहुत सुखी और समृद्ध देश लिखा है। उसके समय मे वहॉ चीजे अत्यन्त सस्ती थीं और बहुत थोड़ी आमदनी का आदमी बडे ऐश आराम से गुजर करता था। इस समय के लगभग सारे भारत मे सम्पत्ति और समृद्धि वढ़ी हुई थी। दिल्ली और आसपास के प्रांतों की आमदनी सात करोड़ के लगभग थी और अकेले दुआबे की आमदनी पचासी लाख थी। चीजें इतनी सस्ती थीं कि आदमी दो चार पैसे लेकर एक जगह से दूसरी जगह की यात्रा कर सकता था। दिल्ली से फीरोजाबाद तक जाने के लिए गाड़ी मे एक आदमी की जगह के लिए दो आने देने पड़ते थे। एक खच्चर किराये पर कराने के लिए तीन आने देने पड़ते थे। छः आने मे किराये का एक घोड़ा मिल जाता था और एक अठन्नी देने पर एक पालकी मिल जाती थी।

काम के लिए कुली बहुत आसानी से मिल जाते थे और वे अच्छी कमाई भी कर लेते थे। सबके पास सोने और चाँदी की बहुतायत थी, हर औरत गहनों से लदी हुई थी, और कोई घर ऐसा न था जिनमे बड़े अच्छे बिछौने, गद्दे, मसहरियाँ और कोच न होते।

परन्तु १४ वीं शताब्दी से देश की दशा बिगड़ने लगी। व्यापार और खेती दोनो की दशा कुछ उतार पर हुई। चौदहवीं शताब्दी के अन्त मे महवान नामक यात्री, जो चीनी च्वांगहो के साथ आया था, लिखता है कि बंगाल मे चावल की दो फसलें होती हैं और गेहूँ, तिल, तरह-तरह की दालें, ज्वार, बाजरा, अदरक, सरसो, प्याज, भंग, बैगन और भाँति-भाँति की साग-सब्जी बंगाल मे बहुतायत से होती है। केला और बहुत से फल बहुतायत से होते है। इस देश मे चाय नहीं होती और मेहमानो को चाय के बदले पान दिया जाता है। नारियल, चावल, ताड़, आदि से शराब बनती है और बाज़ार मे बिकती है। इस देश मे पाँच-छः तरह के बहुत बारीक सूती कपड़े बुने जाते है। रेशमी रूमाल और टोपियाँ जिन पर सोने का काम होता है। चित्रकारी किये हुए सामान, खुदे हुए बरतन, कटोरे, इस्पात के सामान जैसे तलवार, बंदूक, छुरी कैंचियाँ सभी तरह की चीजें इस देश मे तैयार होती हैं। एक तरह का सफेद कागज़ भी एक पेड़ की छाल से बनता है जो हरिन की खाल की तरह चिकना और चमकदार होता है।

१ धन की बहुतायत थी। सिक्कों की बहुतायत न थी। चाँदी सोने के गहने बनते थे। यह बहुमूल्य धातुयें उचित रीति पर कला के काम में आती थीं। आज इस दरिद्र देश में जब आदमी दानो को तरस रहा है, गहने कहाँ पावे। परन्तु गहनों का जहाँ थोड़ा बहुत रिवाज है वहाँ उसी प्राचीन कला की छाया समझनी चाहिए।

अकबर का राज्यकाल पिछले दो हज़ार बरसो के भीतर सब तरह से बहुत अच्छा समय समझा जाता है। यह समय आज से केवल साढ़े तीन सौ बरस पहले हुआ है। हम इस काल से अपने काल का मुकाबला कर सकते है। हम गेहूँ के भाव को प्रमाण मान लें तो आज कल उसे पन्द्रह-सोलह गुना बढ़ा हुआ पाते हैं। दूध का भाव ग्यारह गुना बढ़ा हुआ है। घी सोलह गुना ज्यादा मँहगा है। परन्तु मजूरी का भाव कितना बढ़ा? पहले एक रुपया रोज़ मे बीस मजूर या बीस कुली मिल जाते थे। आज शहरो मे ज्यादा से ज्यादा बड़ा रेट दस रुपये मे बीसकुली है। इस तरह चीज़ो का भाव जितना ऊँचा चढ़ गया है उतनी ऊँची मजूरी नहीं चढ़ी। होशियार से होशियार बढ़ई सवा रुपये रोज़ मे मिलता है। उस समय ग्यारह पैसे रोज़ मे मिलता था। बढ़ई की मजूरी साढ़े सात गुनी से ज्यादा नही बढ़ी। यह नतीजा निकालने मे किसी अर्थशास्त्री को संकोच नहीं हो सकता कि उस समय से इस समय मँहगी सोलह गुनी बढ़ गई है और मजूरी उसके मुकाबले मे बहुत कम बढ़ी है। इससे मजूरो की दशा उस समय के मुकाबले मे बहुत गिरी हुई है। लगान उस काल मे अधिकांश पैदावार का ही एक अश लिया जाता था। किसान प्रायः रुपये नहीं देता था इसलिए जब जितनी पैदावार हुई उतने का निश्चित अश ही देना पड़ा। आज तो ऐसा नही है। आज देने की रकम बन्दोबस्त के समय मे अन्धाधुन्ध बढ़ जाती है; फिर चाहे सूखा पड़े या चाहे टिड्डी लग जायँ या बाढ़ बहा लेजाय, पर किसान को सरकारी लगान उतना ही देना पड़ता है। किसी खेत से, जहाँ बीस मन अनाज होता था वहाँ दो मन लगान मे दे दिया जाता था। उसी खेत मे जब केवल दस मन होता तो लगान भी मन ही मन भर दिया जाता था और इतने

ही मे किसान का देना चुकता समझा जाता था। आज अगर किसी खेत के लगान के बीस रुपए देने है तो वह रकम देनी ही पड़ेगी, चाहे पैदावार कितनी ही कम हो। इस तरह उस समय के मुकाबले इस समय किसान की हालत बिलकुल रद्दी है।

तीसरी बड़ी बात यह है कि बादशाहो की ओर से जो कुछ लगान मुकर्रर होता था, वह सबका सब वसूल नहीं हो सकता था। आज लगान जिस कड़ाई से वसूल किया जाता उससे भी किसानो की बिलकुल बरबादी है।

२. मुग़लों का समय

अकबर के समय मे खेती और किसानों की दशा वैसे ही अच्छी थी जैसी कि पठान बादशाहो के समय मे थी। अलाउद्दीन के समय मे खाने-पीने, पहिनने की चीज़ो के जो भाव मुकर्रर कर दिये गये थे, उनकी पाबन्दी बड़ी कड़ाई से होती थी। परन्तु अकबर के समय मे वह कड़ाई नहीं थी, तो भी सभी चीज़ें बहुत सस्ती थीं। इससे पता चलता है कि उस समय के लोग बहुत सुखी और धनवान थे। उसके समय मे जो सिक्का चलता था और जिस मन के तौल का प्रमाण माना जाता था उसका वर्णन आईने अकबरी मे मौजूद है। आजकल जो सिक्के चलते है और जो तौल का प्रमाण है वह तब से बहुत भिन्न है। हिसाब लगाकर हमने नीचे आजकल के हिसाब से उस समय के हिसाब दिये हैं—

गेहूँ	एक पैसे में	तेईस छटांक
जौ	,,	पैंतीस ,,
उत्तम से उत्तम चावल	,,	ढाई ,,

अत्यन्त मामूली चावल	,,	चौदह	,,
मूंग की दाल	,,	साढ़े पंद्रह	,,
मांश की दाल	,,	सत्रह	,,
मोठ की दाल	,,	तेईस	,,
चना	,,	साढ़े सोलह	,,
ज्वार	,,	अट्ठाइस	,,
सफेद चीनी	,,	सवा दो	,,
शकर	,,	पांच	,,
घी	,,	पौने तीन	,,
तिल का तेल	,,	साढ़े तीन	,,
नमक	,,	सत्तर	,,
दूध	,,	ग्यारह	,,

इस तरह गेहूँ रुपये मे सवा दो मन से ज्यादा मिलता था और मामूली चावल डेढ़ मन के लगभग मिलता था। सबसे उत्तम प्रकार का चावल दस सेर का था। घी रुपये मे साढ़े दस सेर पड़ता था। दूध का भाव एक रुपये मे नौ पसेरी था। और सब तरह की चीज़ें भी इसी तरह के भाव पर मिलती थीं। मामूली भेड़ रुपये डेढ़ रुपये मे मिल जाती थी। भेड़ का मांस एक रुपये मे अठारह सेर मिलता था। मजूरी भी बहुत सस्ती थी। रुपया रोज मे बीस मजूर काम कर सकते थे। बड़ा ही होशियार बढ़ई ग्यारह पैसे रोज मे काम करता था। एक मर्द के लिए एक महीना भर के अनाज का खर्च साढ़े तीन आने से ज्यादा नहीं था। उस समय का अमीर से अमीर आदमी अपने भोजन मे आठ आने महीने से ज्यादा खर्च नहीं कर सकता था। शहर के रहनेवाले पॉच आदमियों के एक अमीर परिवार का

सारा खर्च तीन रुपये महीने से ज्यादा नहीं होता था। यह शहर के रहनेवालो का खर्च हुआ। देहात के रहनेवालो को तो पैसे खर्च करने का कोई काम न था। खेत की पैदावार से ही जब शहरवाले जीते थे, तब देहातों के क्या कहने हैं।

कताई और बुनाई का काम पहले की तरह सारे भारत मे फैला हुआ था और अब इन कामो मे मुसलमान भी पूरा हिस्सा ले रहे थे। राजधानी आगरे मे और फतहपुर-सीकरी में बारीक कपड़ो के सिवाय शतरंजी, कालीनें और बहुत अच्छे-अच्छे फर्श और पर्दों के कपड़े भी बुने जाते थे। गुजरात मे पाटन और खान देश मे बुरहान-पुर और ढाके मे सुनारगॉव सूती कपड़ो के लिए मशहूर थे। इन कपड़ों का नाम ही ढाका, पाटन, बुरहानपुरी और महमूदी आदि मशहूर था। सब तरह के सूती माल का खास बाज़ार बनारस था। पटने मे भी कपास, खद्दर, खॉड, अफीम आदि का बड़ा भारी व्यापार था। फैज़ाबाद जिले का टाँडा रुई के माल का बहुत बड़ा बाज़ार था। गाँव के उद्योग-धन्धे जैसे युगो से चले आते थे अकबर के समय मे भी उसी तरह से बराबर हो रहे थे। उसमे किसी तरह की कमी नहीं आई थी। गाँव और किसान और उसके जान-माल की रक्षा कुछ तो किसान आप ही कर लेता था, कुछ पञ्चायत के प्रबन्ध से होता था और कुछ सरकारी बन्दोबस्त भी था। कोई ऐसा कारण समझ मे नहीं आता कि हम किसान को आज के मुकाबले उस समय कम सुरक्षित समझें। आज भी लुटेरों से किसान उसी तरह सुरक्षित है जैसे उस समय था। परन्तु अकबर सहृदय शासक था और आज का शासन निष्प्राण हृदयहीन यत्र है, जो निस्सहाय किसान को चूसकर उसका सारा तेल निकाल लेता है

और उसे रक्तहीन छोड़ देता है। किसान की क्या रक्षा हुई? इस यंत्र से उसकी रक्षा करनेवाला कौन है?

जहाँगीर और शाहजहाँ तो अकबर के पद चिन्ह पर चलते थे। उनके समय मे गावो की दशा, भारत की आर्थिक और सामाजिक दशा वैसी ही रही जैसी अकबर के समय मे। औरंगजेब के समय मे अवनति का कुछ आरम्भ हुआ। उसके बाद के बादशाहो ने तो लुटिया ही डुबोई।

३. औरंगजेब काल और ब्रिटिशों का चूसनेवाला रोज़गार

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक बोल्ट्स नामक कर्मचारी ने लिखा है कि संवत् १६४७ मे मलबार के समुद्रतट पर अंग्रेज़ी बेड़े ने हिन्दुस्तानी जहाजो की अन्धाधुन्ध लूट की और अपार धन इकट्ठा कर लिया। बगाल में जाब चानाक नाम के अफसर के अधीन, जो कि हुगली मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सबसे बड़ा कारखानेदार था, अंग्रेज सेना के भाग्य ने बहुत से पलटे खाये। बम्बई मे कम्पनी के गवर्नर सर जान चाइल्ड ने अपने नासमझी के व्यवहार से सम्वत् १७४७ के आषाढ़ के महीने तक युद्ध जारी रखा। यह व्यवहार कम्पनी के लिए घातक ठहरा क्योंकि इसमे कम्पनी के साठ लाख से अधिक रुपये का नुकसान हुआ। उनके साथ जो रिआयतें की गई थीं वे छिन गईं और भारतीयो और मुगलो के बीच से उनकी साख उठ गई। सूरत के सूबेदार सैदी याकूब ने बम्बई पर दखल कर लिया, कम्पनी के कारखानेदारो को कैद कर लिया और उनकी गर्दनो में ज़ंजीर बँधवाकर सड़को पर फिराया।

इस युद्ध मे हार जाने के कारण अग्रेजो को संधि की प्रार्थना करनी पड़ी और उस समय के सम्राट औरंगजेब से इस प्रकार क्षमा माँगनी पड़ी। उन्होने अग्रेज राजदूत के नाम से अपने दो कारखानेदारो को दिल्ली भेजा। एक तो जार्ज वैल्डन था और दूसरा अब्राहानवार नाम का यहूदी था। दोनों औरंगजेब के हुजूर मे लाये गये। दूतो के लिए यह एक बिलकुल नया ढग था। उनके दोनो हाथ बँधे हुए थे और उनको सम्राट के सामने साष्टांग दण्डवत् करना पड़ा। सम्राट ने बड़ी लानत मलामत की और तब पूछा कि तुम क्या चाहते हो ? उन्होने बड़ी दीनता से अपने कसूरो को कबूल किया और माफी माँगी। फिर यह प्रार्थना की कि जो फरमान हुजूर से ज़ब्त किया गया है वह फिर जारी किया जाय और सैदी को सेना सहित बम्बई के टापू से लौटा लिया जाय।

औरगजेब बड़ा दयालु और बुद्धिमान राजा था। उनकी प्रार्थना स्वीकार करली और इस शर्त पर माफ कर दिया कि नौ महीने के अन्दर गवर्नर चाइल्ड हिन्दुस्तान छोड़ दे और फिर न लौटे। फरमान इस शर्त के ऊपर जारी किया गया कि जिस रिआया को लूटा गया है, जिनसे कर्ज लिया गया है और जिनका जो कुछ अग्रेजो से नुकसान हुआ है उन सबको धन देकर सन्तुष्ट कर दिया जाय। मुग़ल सम्राट की कृपा से मामला तय हो गया और बङ्गाल मे कम्पनी के एजेण्ट जाबचानाक ने अंग्रेजो को फिर से अपने कारखानो मे आने के लिए आज्ञा प्राप्त कर ली। इसके बाद कम्पनी ने भारत के कई भागो मे अपने कारखाने खोल लिये। ये कारखाने अधिकांश कपड़े के थे। कपड़े का रोज़गार औरगजेब के समय मे बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उत्तर भारत मे भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक

गाँव-गाँव मे चरखा कतता था और खद्दर बुना जाता था। मुगलों के राज के अन्त तक और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य के आरम्भ तक बाफता के लिए पटना, 'टाँडा, चटगाँव, इलाहाबाद, खैराबाद, बीरभूम और लखीमपुर मशहूर थे। इन स्थानों के सिवाय खासे के लिए हरियल, शान्तिपुर, मऊ और लखनऊ का नाम था। चन्दरकोना, शान्तिपुर और हरीपाल की डोरिया सबसे अच्छी समझी जाती थी। महमुदी के लिए टाँडा, इलाहाबाद, खैराबाद, जोहाना और लखनऊ का नाम था। ढाका, पटना, शांतिपुर, मेदनीपुर, गार्जीपुर, मालदह और बनारस आदि स्थान मशहूर थे। सन्नो के लिए और तरींदम के लिए इन सब स्थानो के सिवाय हरीपाल, बुढ़ावल, कासिमाबाद, शान्तिपुर, बालासोर और कोहाना खास जगह समझी जाती थी। ये सब इन कपड़ो के बाजारो के नाम है। इन बाजारो के आसपास के गाँवो मे बड़े जोरो से इन कपड़ो का नाम होता था। इन गाँवो की सख्या अनुमान से कई लाख की होगी। क्योंकि उस समय विदेशो मे यहाँ के बने कपड़े जाया करते थे। सम्वत् १८६२ के लगभग बंगाल के व्यापार के सम्बन्ध मे डाक्टर मिलवर्न के Oriental Commerce (पूर्वी वाणिज्य) की जिल्दो से बड़े काम की गवाही मिलती है। उत्तरी भारत भर मे ये कपड़े बड़ी मात्रा मे तैयार होते थे। इसमे ये अक मिलते है :—

सम्वत् १८६२ के लिए

बंगाल का वाणिज्य किस स्थान से था।	आयात रुपयों में : जिसमें प्रधानतः सोना, चाँदी आदि कोष शामिल था।	निर्यातकपड़े के थानों का
१ लंदन	६७७२२)	२३१५८२
२ डेनमार्क	२१३५)	३३७६३२

३	लिसबन		११११३२५३
४	अमेरिका (संयुक्तराज्य)	२५०६६)	४०६३१३२
५	लंका		१०३६४४
६	सुमात्रा		८५०८६
७	कारोमण्डल का किनारा	११५३६०)	(विशेषतःमाल) ४०१७६२
८	खलीज, फारस और अरब		८४५७८८
९	पेगू		८२२५४
१०	पूलोपिनेंग पूर्ववर्ती देश		८१६६१२
११	बटेविया		६१५६६६
१२	चीन	१८२१२७)	३७६४६६

नोट—चीन को २८८४६१६) की रूई भेजी गई।

ऊपर लिखी सारिणी मे जो वाहरी व्यापार का प्रमाण मिलता है वह इतना तो स्पष्ट कर देता है कि भारत के गाँवों मे कताई-बुनाई का काम वड़े ज़ोरों से चल रहा था। दक्षिण भारत मे भी इस काम में किसी तरह की ढिलाई न थी। दक्षिण भारत के बने कपड़े मछलीपट्टम के वन्दरगाह से बाहर के देशों मे जाया करते थे। दक्षिण में बुरहानपुर में कपड़ो के शाही कारखाने थे और मछलीपट्टम मे और उसके आसपास के अनगिनत गाँवो मे भाँति-भाँति की छींटें तैयार होती थीं और संसार मे भारत का नाम फैलाती थीं। गोलकुण्डा के राज मे खान से हीरे, जवाहिर की खुदाई होती थी और गाँव-गाँव में इस तरह के कारबार थे। राजधानी हैदराबाद के पास के दो गाँव निर्मल और इन्दूर मे लोहे का कारबार इस दर्जे को पहुँचा हुआ था।

कि निर्मली और इन्दूरी तलवारें, बरछे और खजर यहीं से सारे भारत मे जाते थे। और दमिश्क की मशहूर तलवार के लिए यहीं से लोहा जाता था और शमशीर हिन्द का नाम मशहूर करता था। हीरे और सोने के लिए गोलकुण्डा का राज संसार मे प्रसिद्ध था। और मछलीपट्टम के बन्दरगाह से भारत के जहाज ससार के समुद्रो मे आने-जाते थे। खेती उसी तरह वहाँ भी उपजाऊ थी जैसी कि उत्तर भारत मे। और जगलो की पैदावार उसी तरह धन-धान्य देनेवाली थी। सारे भारत मे जहाँतक किसानो का सम्बध है निरन्तर शान्ति का साम्राज्य था। किसानों का इतना आदर था कि कडाई करनेवाले हाकिमो की जब लोग शिकायत करते थे तो वह बहुत करके बरखास्त कर दिये जाते थे। शाहजहाँ ने दाराशिकोह को राजगद्दी पाने के लिए अपनी बीमारी मे ही उपदेश किया कि किसानो को और सेना को खुश रखना। औरंगज़ेब ने अपने लड़को को रैयत को खुश करने के लिए बारम्बार उपदेश किया है। इन बादशाहो का जैसा उपदेश था वैसा ही अपना आचरण भी था। औरगजेब की बादशाहत के जमाने मे प्रजा को कुछ कष्ट होने लगा। प्रजा पर जुल्म होने लगा। औरगज़ेब अपने पूर्वजो की अपेक्षा अधिक कट्टर था। हिन्दुओ पर उसकी कड़ी निगाह थी। उसने सारी हिन्दू प्रजा पर जज़िया लगाया और मुसलमानो का पक्षपात किया। साधारणतया कई प्रकार के महसूल जो हिन्दुओ को देने पडते थे, मुसलमानो को नही देने पड़ते थे। अनेक अपराधो मे मुसलमान छोड़ दिया जाता था क्योकि काफिर हिन्दुओ के विरुद्ध अपराध करने मे मुसलमान दोषी नहीं समझा जाता था। किसान साल के साल मेहनत करता था परन्तु लडाई के कारण शत्रु या बलवान जमींदार उसे

लूट लेता था या उसके धन का अपहरण कर लेता था। सम्वत १७१५ और १७१६ के लगभग इन्ही कारणों से अनाज मँहगा बिकने लगा था। नाके-नाके पर, घाटो पर, पहाड़ी गुजरगाहो पर और सरहदो पर जो माल गुजरता था उस पर राहदारी का माल का दशमांश महसूल देना पड़ता था। यह कहलाता था राहदारी का महसूल। परन्तु महसूल लेनेवाले लोग जुल्म करते थे और कड़ाई करते थे और कई गुना अधिक वसूल कर लेते थे। इससे किसानो के ऊपर सारा बोझ आ पड़ता था। औरंगजेब ने पीछे इस तरह के महसूल उठा दिये तब कहीं जाकर भाव सुधरे और अनाज ठीक तरह से बिकने लगा।

इन सब बातो के होते हुए भी मुगलो के साम्राज्य के अन्त मे भी गल्ले का भाव प्रायः अकबर के समय के ही लगभग रहा।

: ८ :

कम्पनी का कठोर राज्य

ईस्ट इंडिया कम्पनी संवत् १६५७ मे ७० हजार पौंड की पूँजी के साथ भारत से रोज़गार करने के लिए कायम हुई थी। उस समय इंगलैण्ड की सरकार ने उसे एक हुक्मनामा देकर भारत के साथ रोज़गार करने का इजारा दे दिया था। कम्पनी के सिवाय इंग्लैण्ड का कोई बाशिन्दा भारत के साथ रोजगार नहीं कर सकता था। कम्पनी का यह हुक्मनामा हर बीसवें बरस बदला जाता था। भारत मे अशान्ति और बदइन्तजामी होने से, कम्पनी भारत की मालिक बन गई, किन्तु इंग्लैण्ड मे उसका वही पहला ही पद बना रहा। उसके हुक्मनामे का हर बीसवें वर्ष बदला जाना जारी रहा।

विक्रम की अठारहवी शताब्दी तक भारत के गॉव जैसे अनाज उपजाते थे, वैसे ही हाथ की कलाओ मे भी कुशल थे। भारत के करघों से बने हुए कपडे एशिया और यूरोप के बाज़ारो को भरे हुए थे। परन्तु देश की इस कोमल कला को आर्थिक कूटनीति और लूट की भारी भुजाओ ने दबा लिया। युगों के ठोस उद्योग और रोज़गार को कुचल डाला। देश को विदेशी कपड़ो के सबसे बड़े मोहताज की दशा को पहुँचा दिया। इस प्रलयकारी फेरफार से, भारत का दरजा सबसे बड़े बेचनेवाले से, सबसे बड़ा खरीदनेवाला हो गया। बात यह थी कि पार्लमेण्ट और ईस्ट इंडिया कम्पनी ने व्यापार मे हर तरह अपना स्वार्थ देखा। पहले तो उन्होंने भारतवर्ष में कार-

खाने खोलें, और उन कारखानो मे यहाँ के दस्तकारो को काम करने के लिए मजबूर किया। धीरे-धीरे उन्होने जहाँतक बन पड़ा, देश के भारतीय कारखानो को हथिया लिया अथवा बन्द करा दिया। परन्तु जब विलायत मे वहाँ के कारीगरो ने बहुत हल्ला मचाया, तब बाधक कर लगाये गये।

विक्रम की उन्नीसवी सदी के प्रारम्भिक काल मे, विलायत की दस्तकारियो को बढ़ाने के लिए उन्होंने हिन्दुस्तानी माल को विलायत जाने से रोकनेवाले कानून बनाये। उनकी यह निश्चित नीति रही कि भारत विलायत की दस्तकारियो की उन्नति का एक साधन बन जाय और वहाँ के कारखानो तथा करघो के लिये कच्चा माल तैय्यार करनेवाला एक देश ही रह जाय।

इस नीति का पालन सख्ती से किया गया और इसमे उन्हे सफलता प्राप्त हुई। भारत मे रहनेवाले गोरे अधिकारियो को कम्पनी के कारखानो मे काम करने के लिए, भारतीय दस्तकारों को लाचार करने की आज्ञा दी गई। भारतीय जुलाहो के गाँवो तथा उनकी जातियो के ऊपर, कम्पनी के व्यापारिक रेज़िडेण्टों को बहुत बढ़े-चढ़े अधिकार दिये गये। अधिक महसूल लगाकर भारत के सूती और रेशमी कपड़ो का विलायत जाना रोका गया। अंग्रेजी चीजे बिना महसूल दिये ही, या कुछ नाम भरके महसूल पर भारत मे आने दी गईं।

इतिहासवेत्ता विलसन के शब्दों मे, ब्रिटिश दस्तकार ने राजनीतिक हथियारो से अपने मुकाबलेवाले हिन्दुस्तानी कारीगर को दबाया। क्योंकि दोनों को बराबर सुभीते होते तो ब्रिटिश कारीगर हिन्दुस्तानी का सामना न कर सकता। फल यह हुआ कि यहाँ के

लाखों दस्तकारों की रोजी मारी गई और यहाँ की सम्पत्ति के टप-
जाने का एक द्वार ही बन्द हो गया।

इस देश के ब्रिटिश कालीन इतिहास में इस दुःखद घटना का वर्णन इसलिए जरूरी है कि हम समझें कि हम इतने दरिद्र क्यों हैं। और हमे खेती का ही अकेला सहारा क्यों रह गया है। यूरोप मे भाप के बल से चलनेवाले करघों के चल पड़ने से हमारे कारीगर बरबाद हो गये और जब हमारे यहाँ कल कारखाने चले तो इंग्लिस्तान अन्याय और डाह से काम लेने लगा। उसने हमारी सूत की कारीगर पर कर बैठा दिया। इसका फल यह हुआ कि हमारे कारीगर जापानी और चीनी दस्तकारों के मुकाबले के भी नहीं रहे। तबसे यह कर हमारी भाप से चलनेवाली नई कलों का गला घोटता रहा है। जिन लाखों करोड़ों दस्तकारों की रोजी मारी गई, वे बेचारे अपने-अपने गाँवों मे मजूरी और खेती आदि धंधों पर टूट पड़े, जिसे जो रोज़गार पेट पालने को मिला कर लिया। बेचारे लाचार होकर भंगी डोम तक का काम करने लगे। जमीन बढ़ी नहीं, खेतिहर बढ़ गये। पैदावार घट गई, खानेवाले बढ़ गये। हट्टे-कट्टे काम करने-वाले ज्यादा रोटी के लालच से विदेशों मे काम करने चले गये, गाँव उजड़ गये। ससार के अनेक निर्जन टापू गुलामो से बस गये। आज अब दशा यह है कि हमारे देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति का एक ही द्वार खेती रह गई है और आज हमारे देश के हर पाँच आदमी मे चार तो खेती पर ही दिन काटते है। परन्तु ब्रिटिश सरकार द्वारा जो भूमि कर वसूल किया जाता है वह एक तो बहुत ज्यादा है, दूसरे कई प्रान्तो मे तो वह इतना अनिश्चित है कि उसमे खेती की तरक्की करने का कभी किसी को हौसला नहीं हो सकता। कर बढ़ता ही जाता है।

इगलिस्तान में संवत् १८५५ तक भूमिकर लगान के सैकड़ा पीछे ५ और २० के बीच मे था। उस समय के प्रधान मंत्री पिट ने उसको सदा के लिए ठहरा दिया। यहाँ सवत् १८५० और १८७९ के बीच मे बगाल भूमिकर लगान का सैकड़ा पीछे ९० और उत्तरी भारत मे सैकड़ा पीछे ८० रक्खा गया। यह सच है कि इतना भारी भूमिकर लगाने मे अग्रेजी सरकार ने अपने पहले के मुसलमान बादशाहो की ही नकल की थी। परन्तु इन दोनों मे यह अन्तर था कि मुसलमान शासक जितना माँगते थे उतना कभी वसूल नहीं कर पाये। परन्तु अग्रेज सरकार जो कुछ माँगती रही है उसे कड़ाई के साथ वसूल भी करती आई है। बंगाल के अन्तिम मुसलमान हाकिम ने अपने राज के आखिरी साल सवत् १८२१ मे सवा करोड से कम ही रुपये मालगुजारी वसूल की थी। बगाल से अंग्रेजी सरकार तीस वर्ष के अन्दर ही ४ करोड २ लाख रुपये साल की मालगुजारी वसूल करने लगी। सवत् १८५९ मे अवध के नवाब ने इलाहाबाद और कुछ और जिले अग्रेजी सरकार को दिये, जिनसे वह २ करोड़ २॥ लाख रुपये वार्षिक मालगुजारी माँगता था। तीन वर्ष के भीतर अग्रेजी सरकार ने इनकी मालगुजारी बढ़ाकर २ करोड़ ४७॥ लाख रुपये से भी अधिक करदी। मद्रास मे पहले पहल ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भूमिकर नियत किया। बम्बई मे संवत् १८७४ मे मराठो से जीती हुई भूमि की मालगुजारी १ करोड़ २० लाख रुपये थी। कुछ ही वर्षों के अग्रेज़ी शासन के पीछे वह बढ़ाकर सवा दो करोड़ रुपये कर दी गई और तब से वह लगातार बढ़ती ही जा रही है। पादरी हैबरन ने समस्त भारत मे यात्रा करने और सब अग्रेजी तथा देशी राज्यो का निरीक्षण करने के पीछे सवत् १८८३ मे लिखा था कि "कोई

देशी शासक इतना भूमिकर नहीं माँगता जितना हम माँगते है।' सवत १८८७ मे कर्नल ब्रिग्ज़ ने लिखा था कि "भारत का वर्तमान भूमिकर प्राय: समस्त लगान के बराबर है। इतना भूमिकर एशिया अथवा यूरोप मे किसी भी शासक के समय कभी नही सुना गया।"[१]

बगाल और उत्तरी भारत के मनुष्यो के लिए अग्रेजी शासन के प्रारम्भिक समय के इस भारी भूमिकर का बोझ धीरे-धीरे कुछ हलका हुआ। बगाल मे भूमिकर स्थायी नियत कर दिया गया और इसलिए कृषि की वृद्धि के साथ-साथ उसमे वृद्धि नही हो पाई है। अब वह लगान का केवल ३५ प्रतिशत रह गया है। (इसी मे कुछ अन्य कर भी सम्मिलित है।) उत्तरी भारत मे भूमिकर स्थायी तो नहीं किया गया परन्तु सम्वत् १९१२ मे वह घटाकर लगान का ५० प्रति सैकड़ा कर दिया गया। परन्तु पीछे कुछ नवीन कर और भी लगा दिये गये, जिनके कारण भूमिकर बढ़कर लगान का ६० प्रति सैकड़ा हो गया। जमीन्दारो ने अपना सारा बोझ इज़ाफा लगान करके दरिद्र किसानो पर डाल दिया। अन्त मे सब तरह से किसानो की ही बरबादी हुई।

मद्रास और बम्बई की अवस्था और भी खराब है। वहाँ कृषक लोग सरकार को भूमिकर सीधे अदा करते हैं। उनके तथा सरकार के बीच कोई ज़मींदार मालगुजार या ठेकेदार नही है। सम्वत् १९२१ मे सरकार ने आर्थिक लगान का आधा मालगुज़ारी के स्वरूप मे वसूल करने की अपनी इच्छा प्रकट की थी, परन्तु सरकार लगभग सारा आर्थिक लगान वसूल कर लेती है, और बेचारे किसानो को

१ श्री रमेशचन्द्रदत्त के प्रसिद्ध ग्रथ "ब्रिटिश भारत के आर्थिक इतिहास" की भूमिका से सकलित

अपने मेहनत मजदूरी और औजारो, चौपायो इत्यादि मे लगे हुए धन पर लाभ के सिवा कुछ भी नहीं बचता। हर तीसरे बरस नया बन्दोबस्त होता है। किसान जान भी नहीं पाता कि उसका लगान किस कारण से बढ़ाया जा रहा है। उसके सामने बस दो रास्ते रह जाते हैं. या तो वह बढ़े हुए लगान को मान ले या अपने बाप दादो के खेत को छोड़कर भूखो मरे। लगान की यह आये दिन की घट बढ खेती को बढ़ने नहीं देती। किसानो को कुछ बचत भी नही होने देती और उन्हे दरिद्र और कर्जदार बनाये रखती है।

भारत मे भूमिकर केवल भारी और डावाँडोल ही नहीं है, बल्कि जिन सिद्धान्तों पर लगान बढ़ाया जाता है वे जग से निराले हैं। और देशो की सरकार जनता का धन बढ़ाने मे सहायता देती है, अपनी प्रजा को धनी और रँजी-पुँजी देखना चाहती है और फिर उसकी आय का बहुत थोड़ा अश उसकी रक्षा के लिए माँगती है। भारत की सरकार कर लगाकर धन के इकट्ठा होने मे बाधा डालती है। किसानो की आय को रोकती है और लगभग हर नये बन्दोबस्त के समय अपनी मालगुजारी बढ़ाकर किसानो को सदा ही दरिद्र रखती है। इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, संयुक्तराज्य आदि देशो मे सरकार अपनी प्रजा की आय बढ़ाती है, उसकी वस्तुओ की खपत के लिए नये-नये बाज़ार ढूँढती है. भरसक बाज़ारो के ऊपर अधिकार जमाने की चढ़ा ऊपरी मे महासमर तक हो जाते है, उनकी आय के लिए नवीन द्वार खोलती है उनकी भलाई के लिए मर मिटती है, और उनके बढ़ते हुए ऐश्वर्य के साथ आप भी ऐश्वर्यवाली बनती है। भारत मे अंग्रेजी सरकार ने न तो नई दस्तकारियो के चलाने मे सहायता दी; और न उसकी पुरानी दस्तकारियो को ही नया जीवन दिया है,

उलटे वह हर बन्दोबस्त के समय भूमि की पैदावार से मनमानी आमदनी करने के लिए उलट-फेर किया करती है। मद्रास और बम्बई मे लोग हर नये बन्दोवस्त को अपने और सरकार के बीच एक युद्ध समझते है, जिसमे सरकार और प्रजा के बीच परस्पर स्वार्थों की छीना झपटी होती रहती है। और इस लड़ाई का निर्णय करने के लिये कानून मे कोई ठीक विधान या सीमा नही है। माल के हाकिमो का फैसला आखिरी होता है जिसकी कहीं अपील नही है। सरकार की आय और प्रजा की दरिद्रता नित्य बढ़ती ही चली जाती है।

धरती से जल खींचकर सूर्य्य मेघ बनाता तो है परन्तु वह मेघ अपने लिए नहीं बनाता। वर्षा के रूप मे हजार गुना अधिक फैला कर उसी धरती को लौटा देता है।[1] कवि ने अपने यहाँ कर या लगान लेने की नीति का इसी तरह हजारो गुना अधिक बखान किया है। परन्तु भारतभूमि से खींचा गया कर रूपी जल आज विदेशो में ही बरसता और विदेशों को ही उपजाऊ बनाता है। हरेक देश उचित रीति से यही चाहता है कि उसके देश से वसूल किया गया टैक्स या कर वहीं खर्च किया जाय। अंग्रेजो के आने से पहले भारत के बुरे से बुरे हाकिमो के समय मे भी यही बात थी। पठान और मुगल बादशाह जो अपार धन सेना मे खर्च करते थे पर उससे तो यहीं के बहुत से बडे-बड़े घरानो का और लाखो परिवारो का पालन

१ प्रजानामेव भूत्यर्थं सताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥ रघुवंश। १। १८

रवि जैसे हजारगुना बरसा देने के लिए रस लेता है, वह (राजा) प्रजाओं का धन बढाने के लिए ही उनसे कर लेता था।

होता था। वे जो बड़े-बड़े सुन्दर महल बनाने मे या सुख और भोग-विलास की चीज़ों मे या दिखावटी ठाट-बाट मे धन लगाते थे, वह धन इसी देश के कारीगरों और दस्तकारो के हाथ मे जाता था और उनका हौसला बढ़ाता था। सरदार, सूबेदार, सेनापति, दीवान, काज़ी और उनके छोटे हाकिम भी अपने मालिकों की देखादेखी वैसा ही बरताव करने थे, और अनेको मस्जिद, मन्दिर, सडकें, नहरें और तालाब उनकी उदारता के गवाह हैं। वे धन को बेहिसाब उड़ाने भी थे तो वह उड़कर भी भारत के ही वायुमण्डल में फैल जाता था, कहीं बाहर न जाता था। बुद्धिमान और मूर्ख दोनो तरह के शासकों के समय मे भी कर के रूप मे वसूल किया हुआ धन लौट कर प्रजा के ही व्यापार और दस्तकारियों को बढ़ाता था। पर भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य का आरम्भ होते ही दशा बदल गई। कम्पनी भारत को एक बड़ी जागीर या बड़ा खेत समझती थी, जिसका लाभ यहाँ से जाकर यूरोप मे जमा होता था। भारत की सरकार मे मोटी तनख्वाहोंवाले और आमदनी के जितने ओहदे थे, कम्पनी अपने देशवालो को ही देने लगी। भारत की आय से व्यापार की वस्तुये मोल लेती थी और फिर उन्हे अपने नीजी लाभ के लिए योरप मे ले जाकर बेचती थी। व्यापार मे लगी हुई अपनी पूँजी का भारी व्याज वह भारत से कड़ाई के साथ वसूल करती थी। सारांश यह की भारत से भारी कर से जो कुछ वसूल किया जा सकता था, उसमे-से बहुत जरूरी बन्दोबस्ती खर्चों के पीछे जो कुछ बचता था, वह किसी न किसी तरह योरप पहुँचाया जाता था।

: ६ :

विक्टोरिया के राज से वर्त्तमान काल तक

१. भारत का रक्त चूसा जाना

जब सम्वत् १८९४ में अंग्रेज़ी राजगद्दी पर विक्टोरिया बैठी उस समय कम्पनी ने भारत की जितनी हानि करनी थी करली थी। भारत के रेशमी रूमाल यूरोप मे अब भी बिक रहे थे, और यहाँ के तैयार रेशमी माल पर अब भी वहाँ कड़ा महसूल लगता था। पार्लमेण्ट ने कमीशन बैठाकर इस बात की जाँच की कि ब्रिटिश करघो के लिए भारत मे रुई कैसे उपजाई जा सकती है, यह न पूछा कि भारतीय करघो की बढ़ती कैसे कराई जाय। लगातार डेढ़ सदी के लगभग भारत के गोरे प्रभुओं की नीति यही रही है, कि ब्रिटिश कारखानो की बढ़ती भारत के द्वारा कैसे की जाय। भारत के कारीगरो की भलाई का कोई खयाल नहीं रहा। भारत की बनी चीज़ें जो जहाज़ो मे भर-भर कर विलायत भेजी जाती थी वह धीरे-धीरे सपने का धन होती गईं।

हम पिछले वर्षों मे यह देख चुके, कि कम्पनी इस्तमरारी बन्दोबस्त और प्रान्तो मे बढ़ाना नहीं चाहती थी। उत्तर भारत मे उसने पहले लगान का सैकड़ा पीछे ८३ भाग मालगुज़ारी लगाई, फिर उसे ७५ प्रति सैकड़ा और फिर ६३ प्रति सैकड़ा घटाया। यह भी जब ठीक न ठहरा तब सवत् १९१२ मे उसे लगान का आधा

कर दिया। सम्वत १९२१ मे यही लगान की आधी मालगुजारी का हिसाब दक्षिण भारत पर भी लगा दिया गया। संसार के किसी सभ्य देश मे खेती के मुनाफे के ऊपर आधों आध आय कर का लगाना आज तक सुना नहीं गया। पर इतने पर भी सन्तोष होता, तो भी बड़ी बात[१]।

सम्वत १९१५ मे कम्पनी का राज समाप्त हो गया। पार्लमेण्ट के अधिकार मे आजाने पर भी भारत को लेने के देने ही पड़े। पार्लमेण्ट ने कम्पनी के हाथों से भारत की जागीर को ख़रीद कर अपने हाथ मे कर लिया और इसी जागीर के मत्थे ऋण लेकर कम्पनी का देना चुका दिया। कम्पनी ने जो टोटा उठाया था, वह भी भारत के मत्थे मढ़ा गया। साल-साल भारत ही के मत्थे सूद भी चढ़ने लगा। लड़ाई चाहे संसार मे अंग्रेजों को कहीं भी लड़नी पड़ी तो किसी न किसी तरह बादरायण सम्बन्ध जोड़कर उसका खर्च भी भारत की ही जागीर पर लादा गया। रेलें निकलीं तो मुनाफा विलायत गया, और टोटा भारतीय जागीर को सहना पड़ा। इस तरह पार्लमेण्ट के राज ने भारत की जागीर को और भी अधिक निठुराई से चूसना शुरू किया। भूमि और नमक इन दोनो के ऊपर कड़े मे कड़ा महसूल लगने लगा।

सम्वत् १९३२ मे स्वर्गीय लार्ड सैलिसबरी भारत मंत्री थे। उन्होने उसी साल अपनी एक रिपोर्ट मे इस प्रकार लिखा था—

"भारतीय राजस्व-पद्धति के बदलने की जहाँ तक गुँजाइश है, वहाँ तक इस बात की भारी ज़रूरत है, कि किसान को जितना देना पड़ता है उससे कुछ कम ही, कुल देश के राजस्व के नाते वह दिया करे। नीति की ही दृष्टि से यह कोई किफ़ायत की नीति नहीं है कि राजस्व

की प्रायः सारी मात्रा उन देहातों से ही निकाली जाय, जहाँ पूंजी अत्यन्त महँगी हैं, और उन शहर के हिस्सों को छोड़ दिया जाय, जहाँ धन बेकार पड़ा हुआ है, और ऐशोआराम में बर्बाद होता है। भारत के सम्बन्ध में तो बड़ी हानि पहुँचाई जाती है, क्योंकि वहाँ से मालगुज़ारी का इतना बड़ा अंश बदले में बिना कुछ मिले हुए देश के बाहर चला जाता है। जब भारतवर्ष का लोहू बहाना ही है, तब नश्तर उन हिस्सों में लगाना चाहिए, जिनमें लोहू जमा हो, कम से कम काफ़ी हो। उन अंगों में नहीं लगाना चाहिए, जो लोहू के बिना दुबले और कमज़ोर हो चुके हैं।"

लार्ड सैलिसबरी की चेतावनी पर कोई ध्यान नही दिया गया। वही पुरानी कहानी बार-बार दोहराई जाती रही। हर बीसवें और तीसवें बरस बन्दोबस्त होता रहता है, और हर नये बन्दोबस्त पर मालगुज़ारी बढ़ती ही रहती है। कहने को तो लगान की आधी ही मालगुज़ारी ली जाती है, परन्तु असल मे तो बम्बई और मद्रास में इससे तो बढ़ी ही रहती है। मालगुज़ारी मे और कई तरह के महसूल भी जोड़ दिये गये हैं, जिनको बढ़ाने मे सरकार को तनिक भी संकोच नहीं होता। संसार मे कौन ऐसा देश है जिसके धन की इस निठुरायी से चुंसायी हो, तब भी उसकी खेती बर्बाद न हो जाय। भारत के किसान थोड़े मे गुज़र करनेवाले होते हैं, परन्तु तो भी वे दरिद्र हो गये हैं, खोखले हो गये हैं, और सदा दुर्भिक्ष और भूख की भयानक सूरत उनके द्वार पर खड़ी रहती है। श्री रमेशचन्द्रदत्त लिखते हैं—

"घर के देने के नाम से भारत की सारी आमदनी का चौथाई हिस्सा हर साल इंगलिस्तान चला जाता है। और अगर उसके साथ

वह धन भी जोड़ लिया जाय जो यहाँ के विलायती अफ़सर हर साल अपने वेतन से बचाकर इंगलिस्तान भेजा करते हैं, तो यह रक़म तीस करोड़ से कहीं अधिक हो जाती है। संसार का सबसे धनी देश संसार के सबसे दरिद्र देश से यह धन चूसने की वेहयाई करता है। आदमी पीछे १२६०) साल कमानेवाले उन लोगों से आदमी पीछे ७) माँगते हैं, जो लोग आदमी पीछे ३०) साल कमाते हैं। यह सिर पीछे ७॥) रुपया जो भारत के लोगों से अंग्रेज़ लोग लेते हैं, भारत को दरिद्र कर देता है। और इस तरह भारत में अंग्रेज़ों के व्यापार को भी हानि पहुँचती है। इस देने से अंग्रेज़ी व्यापार और व्यवसाय को कोई लाभ नहीं पहुँचता, परन्तु तो भी भारत के शरीर से लगातार लोहू की अटूट धारा बहती चली जाती है।"

यह वात विलकुल सच है। सम्वत् १९५७ मे भारत से माल-गुज़ारी की सारी आमदनी सवा छव्वीस करोड़ रुपये हुई थी। घर के देने के नाम से साढ़े पच्चीस करोड़ उसी साल विलायत भेजे गये थे। यह तो साफ ज़ाहिर है, कि धरती की लगभग सारी आमदनी एक न एक ढंग से विलायत चली जाती है। विलायती अफसर अपनी तनख्वाह् की बचत जो भेजते हैं, वह इससे अलग है। प्रजा से जो कर लिये जाते है, वह यदि देश मे ही खर्च किये जाते, जैसा कि ससार के सब देशो मे होता है, तो वह रकम प्रजा मे ही फैलती। पेशे, व्यवसाय और खेती को बढ़ाती और किसी न किसी रूप में प्रजा का ही धन बढ़ाती। देश के बाहर निकल जाने पर एक कौडी भी देश के काम मे नहीं आती।

रानी विक्टोरिया का राज ६४ वर्ष के लगभग चला। इतने समय मे भारतवर्ष पर अँग्रेजों का फौलादी पजा बराबर जकडना

गया। महसूल बढ़ते गये। करो का भार अन्त मे देश की दरिद्र प्रजा के ही सिर पडता गया। नमक का महसूल दरिद्रो को अत्यन्त खला, परन्तु उसे बढ़ाने मे हृदय-हीन विदेशी सरकार को कभी तरस न आया। विदेशी माल ने बाज़ार को भर दिया। देश के आदमियो की दस्तकारी और कारीगरी का काम छिन गया। खेती से बची हुई घड़ियो मे किसान खद्दर सम्बन्धी काम किया करते थे। वह सारा काम छिन गया। साल मे ६ महीने से लेकर २ महीने तक किसान बिलकुल बेकार रहने लगे। पछाही रोज़गार की कठिन चढ़ा ऊपरी ने यहाँ के एक रोज़गार के बाद दूसरे रोजगार को चौपट कर दिया। कच्ची धातुओं से पक्की धातु बनाना खानो की खुदाई, लोहे आदि की ढलाई के काम बन्द हो गये। नमक बनानेवाली एक जाति नोनिया थी, जिनका काम नमक और शोरा तैयार करना था। यह जाति तो बिलकुल बे-रोज़गार हो गई। नोनिये कभी-कभी कुआँ खोदने का काम करते है। अधिकांश लोग मोटी मजूरी करने लगे। कोष्ठी, बुनकर, कोरी, जुलाहों का रोजगार मारा गया। बढ़ई, लुहार आदि शिल्पी अपनी ऊँची कला भूल गये। सूत कातने की अत्यन्त प्राचीन कला इस कठिन चढ़ा-ऊपरी से नष्ट हो गई। लोगो ने चरखे उठाकर घरो पर फेक दिये, मचानो पर डाल दिये, या लकड़ी की जगह चूल्हो मे लगा दिये। लाखो की गिनती मे बुनकर आदि कारीगर जब बेकार हो गये, तो उनका जहाँ सींग समाया वहीं चले गये। जिनसे हो सका, खेती करने लगे, अनेक मोटी मज़दूरी से ही पेट पालने लगे। गुजरात के हज़ारो बुनकर भङ्गी का काम करने लगे। हथियार बारूद आदि का बनाना एकदम बन्द हो गया। इधर पैसे इतने सस्ते कर दिये गये कि ज़रूरत की सारी चीज़ें अत्यन्त मँहगी हो चली।

२. पैसे की माया

पैसों के भाव की कमी-बेशी करके विक्टोरिया के राज के पिछले २५ वर्षों मे भारत की विदेशी सरकार ने शकुनी का कुटिल और निर्दय खेल खेला। भारत की दरिद्र और मोहग्रस्त जनता इस कुटिलाई को कैसे समझ सकती थी। समझती भी तो कर क्या सकती थी; सरकार बारम्बार नया बन्दोबस्त करके मालगुज़ारी बराबर बढ़ाती गई और किसानों को लाचार होकर ज्यादा-ज्यादा पैसा देना पड़ने लगा। पहले उसको थोड़ा पैसा जुटाने के लिए बहुत अनाज देना पड़ता था, यह उसे खलता था। सरकार ने पैसे का अधिक प्रचार करके एक निशाने मे दो शिकार मारे। एक तो अपनी-अपनी आमदनी बढ़ाई, और दूसरे किसानो मे जो असतोप फैलता उसपर परदा डाला। किसान पैसे की माया मे फाँसे गये। अँग्रेजो ने पैसे को कुछ थोड़ा सस्ता कर दिया। किसानो ने देखा कि पैसा बहुत सस्ता हो रहा है, अनाज दे-दे लगे पैसे जुटाने। जब पैसे इकठे होने लगे तब महीन और चमक दमकवाले कपड़े, खिलौने लम्प, लालटेन तसवीरें, इत्र, सुगन्ध फुलेल और भाँति-भाँति की विदेशो की बनी शौकीनी चीजे उन्हीं पैसो के बलपर खरीदने लगे और दरिद्र किसान शौकीन रईसो की नकल करने मे अपनी बड़ाई मानने लगे। जो शहर के बच्चे रूखी रोटी और नमक कलेवा करते थे, और नगे पाँव लंगोटी बाँधे पढ़ने या काम करने जाने मे सकोच नहीं करते थे, वही माँग काढ़ने, बाल सँवारने, फैशन बनाने और रईसो की-सी लम्बी ढीली धोती बाँधने लगे। यह सब शौकीनी की चीज़े विलायती चल गईं, जो अनाज से नहीं मिलती थीं। इनके लिए पैसो की बहुत

ज़रूरत पड़ी। फिर शादी, ब्याह, मूड़न छेदन की तरह गिरस्ती में आये दिन हौसले बढ़ने लगे, चढ़ा ऊपरी होने लगी। बेकार खर्चा बढ़ गया। अब हरेक को पैसे की लत लग गई। अनाज देकर अब सौदा मिलना मुश्किल हो गया। सुई, डोरा, नमक, हल्दी, सूत, रुई सब तरह की ज़रूरी चीज़े, जो अनाज देकर मिलती थी, पैसे पर मिलने लगीं।

मुसलमानो के राज मे किसान जो चाहता था, मालगुजारी मे दे सकता था, चाहे अनाज दे, चाहे रुपया। विदेशी सरकार ने देखा कि अनाज लेने मे झझट है, और जब पैदावार मारी जायगी तब तो घाटे मे रहेंगे। इसलिए मालगुजारी मे अनाज लेने की रीति उठा दी गई। फिर भी ज़मीदार असामियो से अक्सर लगान मे अनाज का अश ले लिया करते थे। सरकार की नीति से यह भी चलने न पाया। जब ज़मीदारो से मालगुज़ारी के रुपये लिये जाने लगे, तो उन्हे भी अनाज के बदले रुपया लेने मे सुभीता पड़ा। माल-गुजारी और लगान की दरें ठहराई गई। और ठहराई हुई रकमे किस्तो मे वसूल की जाने लगीं। अब ज़मीदार या राजा का महसूल अनाज की पैदावार पर नही रहा। खेत मे अनाज उपजे, चाहे न उपजे, पर राजा और जमींदार अपना महसूल बिना लिये नही रहते। किसान चाहे भूखो मर जाय, पर उसे लगान की रकम देनी होती थी। इसमे पैसेवालो की और भी बन आई थी। साहूकारो ने टका रुपया और आना रुपया ब्याज लगाकर किसानो को चूसना शुरू किया। किसानो को कर्ज़ लेने की बान पड़ गई, और एक बार जिस किसान ने कर्ज़ लिया, समझो कि वह खड़ा लुट गया। क्योंकि एक तो इतना भारी ब्याज ही देना पड़ता था, दूसरे ब्याज-पर-ब्याज लगाया जाता था। किसान की खेती-बारी धीरे-धीरे साहूकारों के

पास चली गई। इस तरह देश मे जमींदार और साहूकार तो बसे और किसान उजड़ गये। कलकत्ता, बम्बई, करॉची, हैदराबाद, मद्रास लाहौर, अहमदाबाद, इन्दौर, आदि बड़े-बड़े शहरों मे उजड़े हुए किसान कुलीगीरी करने लगे, और लाखो इसी तरह के बे-खेत और बे-घर के मर्द औरत गिरिमिट की गुलामी करने के लिए मिरिच के देश, ट्रिनीडाट, फीजी आदि विदेशी टापुओ मे चले गये। किसानो की सिधाई और भोलेपन के कारण आरकाटियो को उनके बहकाने मे बड़ी आसानी हुई। आरकाटी गाँव मे आया और किसान का बडा हितैषी बनकर रहने लगा। दुखी किसानों के जिनके खेत साहूकारो की ठगी के कारण चले गये थे, उसने बहकाना शुरू किया "तुम हमारे साथ कलकत्ते चलो, हम तुम्हे ३) रु० रोज की मजदूरी दिला देंगे, मज़े मे खाना और बचाना, और रुपये जमा करके अपने खेत छुड़ा लेना। कुछ दिनो मे तो तुम जमींदारी खरीद लोगे। यहॉ क्यो अपनी मिट्टी खराब करते हो? कलकत्ते जाने को खर्च नही है, तो किराया हम दिलवा देगे। नौकरी चाकरी खर्च-वर्च हम सब कुछ दिलवा देंगे, मौज काटो।" आरकाटी ने पैसो का जो जाल बिछाया उसमे रोटियों को तरसनेवाला किसान फँस गया। कलकत्ते जाकर गिरमिट लिखाकर सदा के लिए गुलाम बन गया। इन बेचारे किसानो मे से अपने जीवन मे हज़ारो मे से कोई एक मुश्किल से जीते जी फिर अपनी मातृ-भूमि के दर्शनो के लिए लौट सका।

वे लौटे क्यो नही? इसीलिए कि वे पैसे के मायाजाल मे बेतरह फँस गये। पच्छाहीं सभ्यतावाले देशो मे पैसा रुपया बहुत सस्ता है। खाने-पीने पहिरने की चीज़े बहुत महँगी हैं। और कोई बाहरी लूटनेवाला नही है, क्योकि वहाँ के लोग आप ही कल-बल से जगत

को लूटते रहते हैं। इसीसे वे धनवान हैं। वे तीन-तीन रुपये रोज़ मजूरी भी देते हैं। हमारे दरिद्र किसान उनके यहाँ मजूरी करने लगे तो उन्हीं की तरह खाने-पीने भी लगे। अपने देश मे जैसा खाते थे उसमे मान लो कि चारो आने भी खर्च हो जाते थे तो भी चार आने रोज की मजूरी करनेवाला कारीगर घाटे मे नहीं रहता था, क्योंकि उसका अपने घर का घर होता था, खेत-बाड़ी भी होती ही थी। परन्तु वहाँ के तीन रुपये यहाँ के चार आने से ज्यादा कीमत नही रखते, क्योंकि वहाँ पैसा सस्ता है और सब चीज़े मँहगी है। वहाँ के असुरो को बुरी लतें भी लग जाती है। तीन रुपये मे दो ढाई रुपये रोज़ तो खर्च ही हो जाते हैं, बचता बहुत कम है। फिर जब वह गुलामी से छूटता है तो जो कुछ बचाया होता है वह इतना ज्यादा नही है कि आने-जाने का भारी खर्चा सहकर भी इतना बच जाय कि अपने लिए भारत मे खेत खरीद ले। वह अभागा इस देश मे किस बिरते पर लौटेगा? यहाँ विदेशी सरकार ने पैसो का जो मायाजाल बिछाया उसमे फँसाकर जमींदार ने किसान को चूसा, साहूकार ने किसानो को चूसा और जब उसमे खून नही रह गया, जब वह बिलकुल बे-घर-द्वार होकर बरबाद होगया, तब उसकी बची हुई भूखी हाड़ की ठठरी को आर-काटी ने रेल का किराया और भोजन देकर मोल ले लिया। अपने भाई को पैसे लेकर राक्षसो के हाथ बेच दिया। यह सब कुछ विदेशी लुटेरो के लिए किया गया। जानकर नही अनजान मे, और पैसो की माया मोह मे फँसाकर। जिसके खेती-बारी, जगह-ज़मीन नहीं रह गई, और रगो मे खून भी नहीं रहा, वह बेचारा इस देश मे रह कर सूखी ठठरी मे प्राणो को किस सहारे रखता।

यह तो कथा हुई सबसे नीची श्रेणी के लोगो की जो खेती भी

करने थे, और मजूरी भी करते थे। जो उनसे अच्छे थे और भूखो नहीं मरते थे, वे भी पैसो के मायाजाल मे फँसकर बरबाद हुए। ये लोग अपने को ऊँची जाति के समझते थे। इनकी मोटी समझ मे भी जो ज्यादा खर्च करे वही बड़ा इज्जतदार समझा जाता। इसीलिए यह अपने को समाज मे ज्यादा इज्ज़तदार सिद्ध करते रहे। इसमे उन्हे रुपयो की ज़रूरत पड़ा करती थी। राली ब्रदर्स के एजेण्ट फसल तैयार होने के पहले से ही घूमा करते थे। राली ब्रदर्स विलायत का एक भारी व्यापारी है, जो लाखो मन अनाज भारत से खींच ले जाता है। इसके कारिन्दे रुपया लेकर गाँव-गाँव घूमते हैं; खड़ी फसल कूत करके खरीद लेते है। या नाज का भाव पहले से ठहरा कर किसान को पहले से रुपया दे देते है, और सस्ता अनाज और रुपये का सूद किसान से वसूल कर लेते है। पैसो की माया मे पड़कर किसान अपने खाने के लिए काफी अनाज तक नहीं रखते। यह देखकर कि रुपया ज़्यादा मिलेगा, भूखों मरकर भी अन्न बेच डालते है। यह खूब जानते है कि पैसो से पेट नहीं भरता, फिर भी पैसो पर लट्टू हो रहे है।

हमारे देश मे पैसो की माया मे फँसकर बे-ज़रूरी चीजो की खेती अगर न की जाती और पहले की तरह अनाज और कपास का ही अधिकार खेतो पर रहता तो भी हमारी दरिद्रता इतनी अधिक न होती। हमारे किसान पैसो की माया मे फँसकर विदेशी सरकार से दादनी लेने लगे, और खेतों से जहाँ अमृत उपजाते थे, जहर बोने और उपजाने लगे। पोस्ते की खेती करके अफीम बेचने लगे। तम्बाकू की खेती करके देश मे जहर फैलाने का उपाय करने लगे। तम्बाकू और अफीम ने किसानों को मोह मे फँसाकर कहीं का न रक्खा। ताड़ी से, शराब से, गाँजा, भंग, चरस आदि जितनी नशीली

चीज है, सब से बिदेशी सरकार को आमदनी होने लगी। इसलिए इन सब चीजों का प्रचार किया गया, और किसान लोग पैसे की माया मे फँसकर उस महापातक के काम मे भी पैसा-पूजकों की मदद करने लगे। पैसे की माया ने किसान को बरबाद कर डाला।

पैसे की माया अपार है। पैसा अग्रेजों का देवता है, असुरों का परमात्मा है। उसकी माया मे जिसे देखो वही फँसा हुआ है। किसान का तो सारा रोज़गार पैसे ने छीन लिया है। बारीक, चिकना, चम-कीला, सस्ता मलमल देखकर किसान लट्टू हो गया। मोटा खद्दर उसके बदन मे चुभने लगा। कारिन्दे ने ज्यादा पैसे देकर कपास की फसल खरीद ली। उसने भी खुशी से वेच दिया। सोचा कि "इन्हीं पैसों से महीन मलमल खरीद लूँगा। ओटने, धुनने, कातने, बुनने की मेहनत से बच जाऊँगा। और इन्हीं कपड़ों से महीन कपड़ा भी मिल जायगा। मेरे घर की औरते बारीक सूत नहीं कातती।" इस तरह जो पैसा विलायत से अनाज और कपास के लिए किसान को दिया था, वही पैसा बारीक कपड़ा पहनाकर फिर लौटा लिया। देखो पैसे की माया मे डालकर किसान को कैसा वेवकूफ बनाया। किसान के घर मे दरिद्र का वास होगया। चरखा, चक्की और रई का चलना बन्द होगया। चीनी का रोजगार, पटसन, सन, सूत, ऊन की कताई-बुनाई का रोज़गार उसके हाथ से छिन गया। देश के लाखो बुनकर, कोली जुलाहे वेरोज़गार होगये। जब कोई रोज़गार न रहा, लाचार हो, कुली, भगी, डोम आदि का काम करने लगे या विदेश चले गये। जिन लोगो को खेत मिल सके वे खेती करने लगे, या खेती मजूरी दोनो करने लगे। इस तरह खेती करनेवाले बहुत बढ़ गये और उनके पेट का भी बोझा खेती के ही कन्धो पर आपड़ा।

अब खेत की ज़मीन बढ़ानी पड़ी। वह कहां से आये ? गाँवों की गोचर भूमि जो गउ-बैलों के लिए छूटी रहती थी वह खेती के काम मे आने लगी। बेचारी गउओं को उनकी मिल्कियत से निकाल बाहर किया गया। पैसों की माया ने उनकी रोजी छीनकर भी उन्हे कुशल से न रहने दिया। उनकी जान के लिए बड़ी-बड़ी कीमत लगने लगी। जीती गऊ का कम दाम मिलने लगा, पर उसकी लाश पर ज्यादा पैसे मिलने लगे। जीती गऊ का दाम १०) था, तो उसके चमड़े का दाम १३) मिलने लगा। और मारी हुई का मांस और उसकी हड्डी का दाम अलग खड़ा होने लगा। पैसे की माया मे फॅसकर किसान ने अपना तन बेच दिया, घर-द्वार बेच दिया, अब उसने अपनी गऊ माता को भी बेचकर नरक का रास्ता साफ कर लिया। गोरी सेना को खिलाने के लिए हज़ारो गाये इसी तरह ख़रीद खरीद कर काटी जाने लगीं। पैसे की माया ने न गोचर-भूमि रहने दी और न गोचर-भूमि के भोगनेवालो को जीता छोड़ा। दही, दूध, घी पहले खास खाने की चीज़ें थीं। यह आज अमीरो को भी जितना चाहिए उतना नसीब नहीं। पैसे की माया हमारे सामने की परसी थाली छीन ले गई। बच्चों के मुँह से दूध की प्याली हटा ले गई। और नकली घी, रेशम, चीनी आटा आदि सभी चीज़ें उसने फैलाई। उसने हमे हड्डी, चरबी, मांस खिला और चबवा कर छोड़ा। एड़ी से चोटी तक हमे हिंसा का अवतार ही नहीं बल्कि भूखा, नगा राक्षस बना डाला।

हिसाब करनेवालो ने पता लगाया है, कि इन्हीं पैसों की माया मे फॅस कर आज किसान के सिर पर सात आठ अरब रुपयो का कर्ज़ा है। जब तक किसान इस भयानक कर्ज़े के बोझ से पिस

रहा है, तबतक गांव का सुधार क्या होगा। जबतक ग्यारह करोड़ किसान साल मे नौ से तीन महीने तक बेरोजगार रहेंगे, जबतक हमारा अन्न दूसरे खाते रहेंगे, और हम मुँह ताकते रहेंगे, जबतक हम अपने तन ढकने के लिए मचेस्टर के मुहताज रहेंगे, जबतक गोरो का पेट भरने के लिए हमारा गोधन बरबाद होता रहेगा, जब तक हम ठंडे रहेंगे और हमारे हृदयो मे अपने को पच्छाहीं सभ्यता की गुलामी और पैसों की मायाजाल से छुटकारा पाने के लिए आग न लग जायगी, तबतक गाँवो का सुधार न होगा।

भारत मे जहाँ-जहाँ रैयतवारी ढग हैं, वहाँ तो सरकार से सीधा सम्बन्ध है। पर जहाँ-जहाँ जमींदारी की चाल है वहाँ बीच मे जमींदार के पड़ जाने से किसान के साथ जमींदारों से रगड़ा-झगड़ा लगा रहता है। आपस के झगड़े भी बटवारे हकीयत आदि के लिए लगे रहते हैं। आये दिन नोन सत्तू लेकर खेती के उपजाऊ कारबार को छोड़कर, अपना लाख हरज करके, अपने भूखे बीबी-बच्चो को बिलखते छोडकर बेचारे किसान को बीसो कोस की दौड़ लगानी पडती है। वकीलो मुख्तारो के दरवाजो पर ठोकर खानी पड़ती है। बेचारे को आधे पेट खाने को नहीं मिलता, पर वकीलो मुख्तारो, अहलमदो, पेशकारो और अदालत के अमलो को और अनगिनत ऐसे ही रिश्वतखोरो को, कर्ज लेकर, खनाखन रुपये गिनने पडते हैं। नालिश करते ही रसूम तलबाना वगैरा के लिए खर्च करना पडता है, और अन्त मे फल यह होता है, कि हारनेवाले और जीतनेवाले दोनो के दोनो कर्ज़े से लद जाते है, और जायज और नाजायज खर्च दोनो मिलकर मुकदमा जीतनेवाला भी घाटे मे ही रहता है। पुराने जमाने की पंचायतें इसीलिए उठ गई कि उनके अधिकार विदेशी

सरकार ने छीन लिये और देहातों के कोने-कोने तक अपना अख्तियार फैलाने के लिए गाँववालों को कचहरी के अर्थात मूड़ने वालो के मातहत कर दिया।

इसी तरह मिलों और कारखानो मे जहाँ मजूरो और मालिक का सम्बन्ध है, वहाँ भी पैसे की माया अजब खेल खिला रही है। पैसा सस्ता हो जाने से सारी चीजें महँगी तो हो गई, पर मजूरी उसी हिसाब से नहीं बढ़ी। हम यह बात और जगह दिखा आये हैं। पैसे की माया के कूटनेवाले बेलट के नीचे दरिद्र मजूर और किसान कंकड़ और पत्थर के टुकडो की तरह पिस गये। और पैसे के पुजारियो की ठंडी सड़क बन गई।

अभी कुछ ही बरस हुए कि ब्रिटिश सरकार की ओर से पंचायतें बनने के लिए कानून बना, परन्तु इन पंचायतो मे वह बात कहाँ है, जो पुरानी पंचायतो मे थी। पंचायतो के प्रकरण मे हम देखेंगे, कि पहले कैसी पंचायते होती थी, आज ब्रिटिश सरकार ने जो पंचायते बनाई है वे कैसी है, और जैसी पंचायतो से हमारे देश का कल्याण हो सकता है, वैसी पंचायते कैसे कायम हो सकती है।

३. आज कैसी दशा है ?

महारानी विक्टोरिया के राज मे भारत की जितनी दुर्दशा हो चुकी थी, वह यूरोप के महासमर तक बराबर बढ़ती ही गई थी, और युद्ध के बाद तो वह इस हद तक पहुँच गई कि, भारत के अत्यन्त शान्त, अत्यन्त सहनशील, और अहिंसा के भक्त, भिक्षा माँगने तक के विनयी भारतवासी अत्याचारों से इतने व्याकुल हो गये कि उन्होने

स्वतन्त्रता का शान्त निरस्त्र युद्ध आरम्भ कर दिया। विदेशी सरकार मुद्दत से इस बात को जानती थी, कि जितने भारी अत्याचारो को भारतवासी चुपचाप सह रहे है, उनको ससार की सभ्यता के इतिहास मे किसी भी देश ने बर्दाश्त नहीं किया है। इसी अपडर से सम्वत् १६१४ के असफल भारतीय युद्ध के कुछ बरसो बाद ही सारे ब्रिटिश भारत के हथियार कानून बनाकर अपने कब्जे मे कर लिये। एक तरह से सारे देश को निहत्था कर दिया, और पासपोर्ट के कानून से भारत के अन्दर बाहर से आना या भारत से बाहर को जाना अपने कब्जे मे कर रक्खा है।

भारतवर्ष एक बहुत भारी किला है, जिसके भीतर अंग्रेज़ नव्वाबों की जागीर है. जहाँ करोड़पती से लेकर भिखमगे तक उनके कैदी है, इन कैदियो की कई श्रेणियाँ हैं, जिसमे पहली श्रेणी मे बड़ी-बड़ी रियासतो के शासक महाराजा, राजा, नव्वाब ताल्लुकेदार और भारी-भारी उपाधियोवाले ज़मीदार आदि है। उसके बाद बीच की श्रेणी के लोग है। परन्तु इन दोनो की गिनती बहुत थोड़ी है। सैकडा पीछे निन्यानबे वे दारिद्र कैदी है, जिन्हे इज्ज़त के लिए मज़दूर और किसान कहते हैं। उन बेचारो को भर पेट मिट्टी मिली हुई वे रोटियाँ और कीचड सी वह दाल और घास का वह भलरा भी भरपेट नसीब नहीं होता, जो इस बड़ी जागीर के मालिक लोग डाकुओ, चोरो, हत्यारो, लठबाज़ो और अत्याचारी गुण्डो को इस किले के भीतर की जेलो मे खुशी से देते हैं। क्या ससार मे ऐसी दुर्दशा किसी सभ्य देश की सुनी गई है ?

इस ससार के अनुपम और विशाल किले के भीतर, इन कैदियो की जो दशा है, अगर उसका पूरा और सच्चा चित्र इन्हीं कैदियो के

सामने रक्खा जाय और उन्हे उनके कष्टो की गम्भीरता का पूरा ज्ञान करा दिया जाय तो शायद उसका फल अत्यन्त भयङ्कर हो, जिसका अनुमान करना बड़ा कठिन है। भूल और अज्ञान ऐसे मौको पर बहुत बड़ी चीज़ है, उससे लाभ भी है, और हानि भी। भूल और अज्ञान की वेहोशी मे भारतवर्ष को नश्तर पर नश्तर लगते जाते हैं, खून का चूसा जाना लार्ड सैलिसबरी की राय के विरुद्ध अन्धाधुन्ध जारी है। इस वेहोशी को कायम रखने के लिए भारत के रहनेवाले सौ मे चौरानवे आदमियो को सब तरह की शिक्षा से विदेशी सरकार ने अलग रक्खा है, और कहा यह जाता है कि आम तालीम पहले कभी दी ही नही जाती थी। पहले के किसान खेती के काम मे जितने होशियार थे उसकी गवाही मे पुराने विदेशी लेखक लाख-लाख मुँह से सराहना करते थे। परन्तु गिरमिट की गुलामी ने हमारे यहाँ से कुछ तो खेती की कला मे कुशल मजूरो और किसानो को विदेशो मे भेज दिया, और अधिकांश भारी लगान कर्ज़ आदि के बोझ से लदकर उजड़ गये। नये ढंग की मुकदमेबाज़ी मे फँस-फँस कर मर-खप गये, और महामारी हैज़ा आदि दुर्भिक्ष के रोग उन्हे उठा ले गये। अकाल बारम्बार पड़ने लगे, और इतनी जल्दी-जल्दी पड़े कि भारतवर्ष मे आज अकाल सदा के लिए ठहर गया है। इन सब बातो ने भारत के किसानो की खेती की कला को चौपट कर दिया। जब बेटे को सिखाने का समय आया, बाप चल बसा। भाई-भाई मे मुकदमेबाज़ी हुई, बँटवारे मे चार-चार पक्के बीघे खेत लेकर अलग हो गये। अब हर भाई को अपना-अपना हल-बैल अलग रखना पड़ा। उधर मुकदमेबाज़ी ने घर की सम्पत्ति को स्वाहा कर दिया, इधर साहूकार के दिये हुए ऋण ने ब्याज और सूद पर

सूद मिला कर सुरसा की तरह अपना मुँह बढ़ाया, और अन्त मे रहे-सहे वह चार बीघे मय हल-बैल के निकल गया। घर-घर किसानो के यहाँ यही कहानी आज तक दोहराई जा रही है। गाँवो का उजडना आज तक जारी है।

आज भारतवर्ष मे बच्चो की मौतें जितनी ज्यादा होती हैं, संसार मे कहीं नहीं होतीं। दरिद्रता के कारण माँ-बाप न तो बच्चो को दूध दे सकते हैं और न उनके पालनपोषण की ओर ध्यान देते है। बच्चो के होते समय न तो किसी तरह की सहायता पा सकते है। और न सफाई रख सकते है। सफाई और तन्दुरुस्ती भी कुछ अश तक धन के सहारे ही होती है। इसीलिए दरिद्रता और दुर्भिक्ष ने पहले रास्ता साफ करके रोगो के खेमे खड़े किये, और जब मौत का पडाव बन गया, यमराज ने आकर डेरे डाले। आज भारतवासियो की औसत उम्र २८ बरस की हो गई है। जितने आदमी भारतवर्ष मे मरते है, उतने ससार मे और कहीं नहीं मरते। और देशो की हुकूमते अपनी आबादी बढ़ाने की चिन्ता मे रहती है, सुख, समृद्धि बढ़ाती रहती है, और इन बातो के लिए जरूरत पड़ती है, तो खून की नदियाँ बह जाती है। यहाँ की हुकूमत भी खून की नदियाँ बहाती है, परन्तु खून होता है भारतवासियो का, और नदियाँ बह कर विलायत के सुख-समृद्धि को सींचती है, और बढ़ाती हैं। इस किले के महा-प्रभुओ की यह मशा नहीं है कि कैदियो की ठठरियो मे जो खून बने, वह उनके पास रह जाय। मचेस्टरवालो को तो शायद इस बात मे खुशी होगी कि भारत मे मौते ज्यादा होती है, और कफन की बिक्री अच्छी होती है।

हाथ-पैर के मजबूत और खेती के काम मे कुशल किसान जब

देश मे एक वार उजड़ जाते हैं, तो देश के सम्भालने मे युगो का समय लग जाता है। भारतवर्ष की उजड़ी खेती को फिर पहले की तरह अच्छी दशा मे लाने के लिए अब से सैकड़ो बरस लगेगे शर्त यह है कि सुधार के काम मे भारत के लोग प्राणपण लग जायँ। विदेशी सरकार हमारी उन्नति के लिए अपने को बहुत चिन्तित प्रकट करती है परन्तु यह दम्भ मात्र है। उसे वस्तुतः चिन्ता यह रहती है कि पैदावार घटकर हमारी आमदनी को न घटा दे।

आज भारतवर्ष मे वेकारी का डंका बज रहा है। यह बात जग जाहिर है कि खेती मे कही भी बारहो मास के लिए किसान या मजूर को काम नही मिल सकता। बगाल के फरीदपुर जिले को भारतवर्ष मे आदर्श समृद्ध जिला बताते हुए जैक नामक एक सिविलियन लिखता है कि यहाँ का किसान तीन महीने की कड़ी मेहनत के बाद नौ महीने बिलकुल बेकारी मे बिताता है।[१] "अगर वह धान के सिवा पटसन भी उपजाता है तो जुलाई और अगस्त के महीनो मे उसे छ हफ्ते का काम और रहता है।"[१] इस तरह कम से कम साढ़े सात महीने बगाल के किसान बेकार रहते है। श्री कैलव्हर्ट का[२] कहना है कि पजाब के किसान ३६५ दिनो मे अधिक से अधिक १५० दिन पूरी मेहनत करते है। बाकी सात महीने बेकार रहते है। सयुक्तप्रान्त के लिए श्री इडाई का बयान है कि दो बार बोवाई, दो फसलो की कटाई, बरसात मे कभी-कभी निराई और जाड़ो मे तीन बार सिंचाई—किसान के लिए कड़ी मेहनत का काम इतना ही है—

१. J C Jack : The Economic life of a Bengal District, Oxford, 1916, pp. 39

२. Calvert's Wealth Welfare of the Punjab PP. 245

बाकी साल भर किसान बिलकुल बेकार रहता है। बिहार और उड़ीसा के लिए श्री टाल्लेंट्स और मध्यप्रान्त के लिए श्री राउटन भी ऐसा ही कहते है। श्री गिलबर्ट स्लेटर का कहना है कि मद्रास प्रान्त मे जहाँ एक फसल होती है वहाँ किसान को केवल पाँच महीने काम पड़ता है और जहाँ दो फसल होती हैं वहाँ कुल ८ महीने, इस तरह कम से कम चार महीने किसान को दक्षिण देश मे बेकार रहना पड़ता है।[१] इस तरह भारतवर्ष भर मे कम से कम चार महीने से लेकर नौ महीने तक किसान बिलकुल बेकार रहता है। श्री ग्रेग ने भारत के पक्ष को अत्यन्त दबाकर औसत बेकारी कम से कम तीन महीने रक्खी है। अपने ही पक्ष मे अटकल की ऐसी कड़ाई वर्तमान लेखक अन्याय समझता है। यह औसत साढ़े छ महीने होता है परन्तु समीक्षा की कड़ाई और हिसाब के सुभीते के लिए हम इसे छ महीना रखते है।

भारतवर्ष की खेती पर निर्भर करनेवाली आबादी सैकड़ा पीछे ७२ के लगभग है। इसमे भी जो लोग खेतो पर मेहनत का काम करते है उनकी गिनती लगभग पौने ग्यारह करोड़ है। हम बिना किसी अत्युक्ति के यह कह सकते है कि यही पौने ग्यारह करोड़ आदमी औसत छः महीने बिलकुल बेकार रहते है। कड़े अकाल के दिनो मे विदेशी सरकार सहायता के रूप मे भारत के भुक्खड़ो से कसकर काम लेती है और दो आने रोज मजूरी देती है। हिसाब के सुभीते के लिए हम पौने ग्यारह करोड़ की जगह दस ही करोड़ लें

१ Prof Gilbert Steater Some South Indian Villages Oxford University Press, London p 16, and Census Reports pp 270, 271 and 274, For Bihar & Orissa, U P, and C. P. respectively

और केवल एकसौ अस्सी दिनो की मजूरी दो आने रोज़ के हिसाब से रक्खें तो आदमी पीछे साढ़े बाईस रुपये होते है। छः महीने मे दस करोड़ आदमियो की मजूरी के इस हिसाब से सवा दो अरब रुपये होते है, या सवा करोड़ रुपया रोज़ाना होता है। इन पौने ग्यारह करोड़ मनुष्य रूपी मशीनो को बेकार रखकर विदेशी सरकार सवा करोड़ रुपये रोज़ और सवा दो अरब रुपये सालाने का घाटा कराती है। अगर इसे बेकारी का टैक्स समझा जाय, तो भारतवर्ष को इस भयानक बेकारी के पीछे सिर पीछे सात रुपये के लगभग खोना पड़ता है। जिस आदमी की आमदनी साल मे छत्तीस रुपये हो, वह क्या सात रुपये या अपनी आमदनी का पचमांश खो देना सह सकेगा?

सम्वत् १९७८ की मालगुज़ारी की रकम जो सरकार ने वसूल की, सवा अरब से कुछ अधिक थी। भारत की सारी आमदनी सम्वत् १९८१ की एक अरब अड़तीस करोड़ के ऊपर थी। भारत सरकार का कुल खर्च जो उस साल हुआ, एक अरब साढ़े बत्तीस करोड़ से कम था। यही मदे विदेशी सरकार की आमदनी और खर्च की मदो मे सबसे बड़ी है। बेकारी के कारण भारतवर्ष को जितना हर साल खोना पड़ता है, वह इनमे बड़ी-से-बड़ी मद का पौने दो गुने से ज्यादा है। यह तो किसानो की मजूरी की रकम का हिसाब रक्खा गया, परन्तु यही मजूर लोग काम करके जो माल तैयार करते वह उनकी मजूरी से कई गुना ज्यादा कीमत का होता। तैयार माल की कीमत अगर मजदूरी की दूनी भी लगाई जाय तो पौने सात अरब सालाना का घाटा होता है। हर साल पौने सात अरब का घाटा उठानेवाले किसान अगर कुल आठ ही अरब के कर्ज़दार हो तो यह कर्ज़ा कुछ ज्यादा नहीं है। परन्तु जैसे ससार के

किसी सभ्य देश के किसान अपनी जिंदगी के आधे दिन न तो इस तरह बेकार खोते है, और न कई करोड की सख्या मे पेट पर पत्थर बॉधकर सो रहते है, और न इस तरह भयानक रूप से ऋणासुर के डाढो के बीच पिस रहे है।

इस भयङ्कर बेकारी का भयानक परिणाम भी देखने मे आरहा है। खाली दिमाग मे शैतान काम करता है। जिन लोगो को कोई काम नही है वे ज्यादातर हुक्का पीते है और तमाखू फूँक डालते है। तमाखू का ज़हर हमारे समाज के अग के रोयें रोयें मे फैल गया है। तमाखू आदर-सत्कार की चीज़ बन गई है। जो तमाखू खून को खराब कर देता है, हृदय और आँतो को बिगाड़ देता है, आँख की रोशनी को खराब कर देता है अच्छे खासे मर्द को नामर्द बना देता है, क्षय रोग पैदा करता है, और आदमी के जीवन को घटा देता है, उसी ज़हर की खेती कमाई करने के लिए नही तो अपना नाश करने के लिए किसान करता ही है। परन्तु वह इस तरह पर केवल अपने तन-मन को ही नहीं खराब करता, बल्कि अपने देश के धन का भी नाश करता है। अगर हम मान ले, कि भारत के बत्तीस करोड़ प्राणियो मे केवल आठ करोड़ प्राणी धेले की तमाखू रोज़ खाते, पीते, सूँघते और फूँकते है तो इस जहर के पीछे सवा छ. लाख रुपये रोज फूँक देते है। साल मे तेईस करोड़ के लगभग तमाखू मे खर्च कर देते है। ताड़ी और शराब की आमदनी से सरकार अधाधुन्ध फायदा उठाती है, वह तो इसका खासा प्रचार करती है। रहे सहे किसान इन जहरो के कारण उजड़ते जाते है। हमारे देश मे लगभग बारह लाख एकड मे तमाखू की खेती होती है। "शैतान की लकडी" के लेखक ने तो अटकल लगाया है, कि पचास करोड़ रुपये

की तमाखू हमारे देश मे खप जाती है। सन् १९२० ई० मे सरकार को शराब से बीस करोड़ से ज्यादा आमदनी हुई। अफीम से सन १९१९-२० मे सरकार को ढाई करोड से अधिक आमदनी हुई। गॉजा, भॉग, चरस, चाय काफी आदि नशे की चीजे भी बेकार किसान को तबाह कर रही है।

यह भुक्खड़ जिन्हे आधा पेट खाना भी नही नसीब होता नशा किसलिए सेवन करते है। भूखा आदमी पापी पेट को भरने के लिए लाचार होकर ऐसे काम भी कर डालता है, जिनके करने मे उसे शर्म आती है। जब वह होश मे रहता है तब भीतरवाला ऐसे कामो के करने मे रुकावट डालता है, परन्तु शरीर का बाहरी काम कैसे चले। भुक्खड़ भीतरवाले की आवाज सुनना नहीं चाहता, इसलिए नशे से अपने को बेहोश कर देता है। भूखे बाल-बच्चे कष्ट से तड़फ रहे हैं, कमानेवाला बाप उनके मुँह मे अन्न नहीं रख सकता। जी तोड़कर मेहनत करता है, परन्तु मजूरी काफी नहीं मिलती। घोर अकाल के समय मे भी भारत मे काफी अन्न मौजूद रहता है, परन्तु दरिद्र भुक्खड़ के पास पैसे कहाँ है, कि मोल ले सके। वह बेचारा चिन्ताओ से व्याकुल हो जाता है, तड़पते बाल बच्चे देखे नहीं जा सकते, नशा उसे बेहोश कर देता है। इसीलिए वह किसी न किसी ढंग से अपने को बेहोश कर लेता है। पाप करने के लिए जिस तरह आदमी नशा पीता है, पाप कराने के लिए भी उसी तरह दूसरो को नशा पिलाता है। विदेशी सरकार अपने स्वार्थ-साधन के लिए इस विशाल किले के कैदियो को बेहोश रखने के लिए भॉति-भॉति से नशा पिलाती है। हमारे किसान नशे के पीछे भी बेतरह बरबाद हो रहे है।

गायो से ज्यादा सीधा कोई पशु नहीं है, परन्तु चारा थोड़ा हो,

और गाये अधिक हों, तो भी आपस मे लड जायँगी। दरिद्रता की जैसी विकट दशा मे हमारा देश है वह तो प्रकट ही है। खाने को थोड़ा मिलता है, और बेकारी हद से ज्यादा है, तो उसका नतीजा झगड़ा-फसाद क सिवा कुछ नहीं हो सकता। यही बात है कि कोई गाँव ऐसा नही है। और किसी गाँव मे एक घर भी ऐसा नही है, जिसमे झगड़ा-फसाद का बाजार गर्म न हो, और जहाँ आये दिन लोगो मे लट्ठबाजी न होती हो, और फौजदारी या दीवानी तक जाने की नौबत न आती हो। गाँव का पटवारी और चौकीदार और थाने के दारोगा, सिपाही हमेशा इसी फिक्र मे रहते है, कि कोई झगड़ा खडा हो और उनकी जेबे गर्म हो। झगड़े मे झगड़नेवालो का नुकसान ही नुकसान रहता है। और अपनी शान से ही कोरे रह जाते है, और सरकारी लोमडियाँ शिकार का वारा-न्यारा करती है। गाँव-वालों मे कचहरी की दलाली का रोजगार दरिद्रो की इसी कफन खसोटी ने पैदा कर दिया है। जहाँ गाँवो का मुखिया बिना एक कौडी खर्च कराये सच्चा और शुद्ध न्याय कर देता था, वहाँ आज गाँव के दलाल उकसा-उकसा कर चिड़िया लडाते है, और भुक्खड़ो तक को अदालत के दरवाजे पर पहुँचाकर उनका सर्वस्व हर लेने मे कोई कोर कसर नहीं रखते।

४. गाँव का सरकारी प्रबन्ध और लगान-नीति

गाँव के प्रबन्ध के लिए सरकार की ओर से प्रत्येक गाँव मे मुख्यतः दो मुलाजिम रहते है, एक पटवारी और दूसरा चौकीदार। पटवारी को जमीन की नाप-जोख खेतो का लगान और जमीन के बँटवारे आदि का रेकार्ड रखना पडता है। पटवारी इसलिए रक्खा

जाता है कि उससे गाँव का पूरा हाल हुकूमत को मिले। चौकीदार पुलिस की ओर से रहता है कि किसी तरह का उपद्रव हो तो वह उसकी खबर ऊपरी अफसरों को दे। विदेशी सरकार की वर्तमान लगान-नीति को समझने के लिए 'टाइम्स' की 'इण्डियन इयर बुक' में जो लेख है उसका सार यह है '—[१]

सरकार की ज़मीन के लगान-सम्बन्धी नीति यही है कि ज़मीन की मालिक सरकार है और ज़मीन का लगान एक तरह से उसे मिलने वाला किराया है। सरकार इस बात को अनुभव करती है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से इस व्याख्या पर आपत्ति की जा सकती है, पर वह कहती है कि सरकार और किसान के बीच अभी जो सम्बन्ध है उसको स्पष्ट करने के लिए यही शब्द उपयुक्त हैं। किसान अपनी ज़मीन की हैसियत के अनुसार सरकार को लगान देता है। लगान पर समय समय पर पुनः विचार करने के लिए जो सरकारी कार्यवाही होती है, उसे सेटलमेण्ट या बन्दोबस्त कहा जाता है। भारत में दो तरह के बन्दोबस्त हैं, स्थायी और अस्थायी। स्थायी बन्दोबस्त में तो लगान हमेशा के लिए स्थिर कर दिया जाता है। जो किसान से नहीं बल्कि ज़मींदार से वसूल किया जाता है। लार्ड कार्नवालिस ने सन् १७९२ में स्थायी बन्दोबस्त कर दिया। अवध और मद्रास के प्रान्तों के कुछ हिस्सों में भी स्थायी लगान निश्चित कर दिया गया था। शेष सारे देश में स्थायी बन्दोबस्त की प्रथा जारी है। सरकार के सरवे विभाग द्वारा की गई सरवे के आधार पर तीस-तीस वर्ष में प्रत्येक ज़िले की ज़मीन की पूरी जाँच होती है। प्रत्येक गाँव की ज़मीन नापी जाती है। नक्शे बनते हैं। हरेक किसान के खेत को उसमें पृथक-

१. 'विजयी बारडोली' : प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली।

पृथक बताया जाता है, और उनके अधिकारों का रजिस्टर रक्खा जाता है, जिसमें ज़मीनों का लेन-देन आदि लिख लिया जाता है। इस पुस्तक को 'वाजिबुल अर्ज़' (रेकर्ड ऑव राइट्स) भी कहते हैं। यह सब जाँचकर उसके अनुसार लगान क़ायम करने का काम भारत सरकार की सिविल सर्विस के ख़ास तौर पर नियुक्त सभ्यों द्वारा होता है, जिन्हे सेटलमेण्ट अफ़सर कहा जाता है। मि० स्ट्रेची अपनी पुस्तक (इण्डिया के संशोधित संस्करण १९११) में सेटलमेण्ट अफ़सर के कार्यों का नीचे लिखे अनुसार दिग्दर्शन कराते हैं—

सेटलमेण्ट अफसर का काम

"सेटलमेण्ट अफ़सर को सरकार की माँग निश्चित करनी पड़ती है, और जमीन सम्बन्धी तमाम अधिकारों, हक़ों और ज़िम्मेदारियों को रजिस्टर कर लेना पड़ता है। उसकी सहायता के लिए इस काम के अनुभवी सहायक भी दिये जाते हैं। जो प्राय. सब देशी ही होते हैं। एक ज़िले का इन्तजाम करना एक बड़ी जिम्मेदारी का और भारी काम है, जिसमें दिन-रात काम में लगे रहने पर भी बरसों लग जाते थे। खेती-विभाग की स्थापना तथा अन्य सुधारों के कारण अब तो सेटलमेण्ट अफ़सर का काम बहुत कुछ आसान हो गया है, और वह पहले की अपेक्षा बहुत जल्द समाप्त हो जाता है। जितना भी काम सेटलमेण्ट अफसर द्वारा होता है, उसकी उच्चाधिकारियों द्वारा जाँच होती है, और लगान-निर्णय सम्बन्धी उसकी सिफारिशें तभी अन्तिम समझी जाती हैं। उसके न्याय-सम्बन्धी निर्णयों की जाँच दीवानी अदालतों में हो सकती है। सेटलमेण्ट अफ़सर का यह कर्तव्य है कि वह जमीन सम्बन्धी उस तमाम अधिकारों और हक़ूक़ात को नोट करले, जिनपर आगे चलकर किसान और सरकार के बीच झगड़ा होने

की सम्भावना हो। मतलब यह कि वह किसी बात में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। जो कुछ भी बात हो, उसी को वह ठीक ठीक लिख ले।"

दो प्रणालियाँ

अस्थायी बन्दोबस्त में भी लगान दो प्रणालियों से वसूल किया जाता है; एक रैयतवारी और दूसरी ज़मींदारी। जहाँ तक लगान से सम्बन्ध है, दोनों में स्थूल रूप से यह भेद है कि रैयतवारी प्रणाली से जिन प्रदेशों में लगान वसूल किया जाता है, वहाँ काश्तकार सीधा सरकार को लगान देता है, जहाँ ज़मींदारी प्रणाली है, वहाँ ज़मींदार अपने इलाक़े का लगान खुद वसूल करके देता है। अवश्य ही इसमें उसे भी कुछ हिस्सा मिलता है।

रैयतवारी प्रणाली भी दो तरह की होती है। एक तो वही जिसमें किसान खुद सरकार को लगान देता है, और दूसरी वह जिसमें गाँव या जाति का मुखिया गाँव से लगान वसूल करके देता है। सरकार के प्रति जिम्मेदार तो मुखिया ही होता है इस तरह की रीति उत्तर भारत में अधिक है और पहिले प्रकार की रैयतवारी प्रणाली मद्रास, बम्बई, बर्मा और आसाम में प्रचलित है।

पहले की अपेक्षा आजकल की लगान नीति सब प्रकार की ज़मीनों पर, किसानों के लिए अधिक अनुकूल है। पहले तो आगामी सेटलमेण्ट की अवधि में ज़मीन की जो औसत कूती जाती थी, उसीपर लगान लगा दिया जाता था। अब तो लगान कूतते समय ज़मीन की जो उपज प्रत्यक्ष पाई जाती है, उसी के आधार पर लगान का निश्चय किया जाता है। इसलिए किसान अगर अपनी मेहनत से ज़मीन की पैदावार को कुछ बढ़ा लेता है, तो उसका सारा फायदा उसीको मिलता है। हाँ, नये बन्दोबस्त में इस ज़मीन को किस वर्ग में रक्खा

जाय, इसपर पुनः विचार करके, यदि किसान का लाभ नहर, रेल जैसी सार्वजनिक लाभ की वस्तु के कारण अथवा बाज़ार भावों में वृद्धि होने के कारण बढ़ गया हो, तो उस जमीन को नये वर्ग में डाला जा सकता है। पर सरकार ने इस सिद्धान्त को अब मान लिया है कि किसी ख़ास तरीक़े पर कोई किसान अगर अपनी जमीन की उपज बढ़ा लेता है, तो उसपर लगान न बढ़ाय जाय। इस विषय में उसने कुछ नियम भी बना लिये हैं।

लगान की तादाद

भारत में ज़मीन पर जो लगान लिया जाता है, उसकी एक निश्चित दर नहीं है। वह स्थायी बन्दोबस्तवाले सूबों में एक प्रकार का है तो अस्थायी बन्दोबस्तवाले सूबों में दूसरे प्रकार का। फिर जमींदारी तथा रैयतवारी प्रदेशों में और भी अलग-अलग। रैयतवारी में भी वह ज़मीन की क़िस्म उसके अधिकार आदि के अनुसार न्यूनाधिक है। बंगाल में लगभग १६०००००००) रुपये जमींदार लोग अपनी रैयत से वसूल करते हैं, परन्तु चूँकि वहाँ स्थायी बन्दोबस्त हो गया है, इसलिए सरकार उसमें से केवल ४००००००००) रुपये लेती है। अस्थायी बन्दोबस्तवाले प्रदेशों में ज़मींदारों से, अधिक से-अधिक लगान का ५० फ़ी सैकड़ा सरकार वसूल करती है। कहीं-कहीं तो उसे फ़ी सैकड़ा ३५ बल्कि २५ ही पड़ता है। पर यह निश्चित है कि वह फ़ी सैकड़ा ५० से कभी अधिक नहीं होता। रैयतवारी प्रणाली से सरकार का हिस्सा कितना होता है यह ठीक-ठीक बताना ज़रा कठिन ही है। पर ज़मीन की पैदावार का अधिक-से-अधिक पाँचवाँ हिस्सा सरकार का भाग समझ लिया जाय। इसमें कम तो कई प्रकार के रेट मिलेंगे, पर इससे अधिक तो कहीं नहीं है।

लगभग सोलह सत्रह वर्ष पहले भारत के कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने भारत सरकार को अपने दस्तख़त से इस आशय की एक दरख्वास्त (Memorial) भेजी थी, कि वह ज़मीन की उपज के पाँचवें हिस्से से ज्यादा लगान कभी न ले। उस समय लार्ड कर्ज़न वाइसराय थे। उन्होंने इस 'मेमोरियल' तथा अन्य 'रिप्रेज़ेन्टेशेन्स' के जवाब में अपनी लगान-नीति के बचाव में एक प्रस्ताव प्रकाशित किया था। उसमें लिखा था कि "सरकार को जितना लगान लेने को अभी कहा जा रहा है, उससे तो इस समय वह बहुत कम ले रही है। प्रत्येक प्रान्त में औसतन् लगान इससे कम ही है।" यह प्रस्ताव तथा उन प्रान्तीय सरकारों के बयान भी, जिनपर यह कथन आधार रखता था, बाद में पुस्तकाकार छपा दिये गये थे। आज भी सरकार की लगान-नीति के नियमों को प्रकट करनेवाली वही सबसे प्रमाणिक पुस्तक समझी जाती है। उपर्युक्त प्रस्ताव में अनेक सिद्धान्त निश्चित किये गये हैं, उनमें से मुख्य-मुख्य बातें नीचे दी जाती हैं :—

लगान नीति

"(१) जमींदारी प्रदेशों में सरकार की नीति की कुंजी यही है कि धीरे-धीरे लगान कम किया जाय। अधिक-से-अधिक फ़ी सैकड़ा ५० मालगुजारी ली जाय। इस समय तो यदि ग़लती होती है, तो लगान कम वसूल किया जाता है, अधिक नहीं।

(२) इन प्रदेशों में जमींदारों के अत्याचारों से काश्तकारों को बचाने के लिए कानून बनाकर या अन्य तरह से हस्तक्षेप करने में सरकार कभी हिचकिचाती नहीं।

(३) रैयतवारी प्रदेशों में बन्दोबस्त की मीयाद दिन-ब-दिन अधिक बढ़ाने की कोशिश हो रही है। नये बन्दोबस्त के समय जो-जो

कार्यवाहियाँ होती हैं उनको अधिक सरल और सस्ती बनाने की नीति है।

(४) ज़मीन सम्बन्धी स्थानीय कर बहुत ज्यादा और भारी नहीं है।

(५) जैसा कि कहा जा रहा है, 'ज़मीन से इतना कर वसूल नहीं किया जा रहा है कि उसके कारण लोग दरिद्र और कंगाल हो रहे हों। उसी तरह अकालों का कारण भी लगान नीति नहीं है। तथापि सरकार ने आगे के कार्य की सुविधा के लिए कुछ सिद्धान्त कायम कर लिये हैं।

(अ) अगर लगान से इज़ाफ़ा करना है तो वह क्रमशः और धीरे-धीरे किया जाय।

(ब) लगान वसूल करने में कुछ उदारता से काम लिया जाय। मौसिम तथा किसानों की दशा को ध्यान में रखते हुए, कभी-कभी लगान वसूल करने की तारीख़ बढ़ा दी जाय और लगान माफ़ भी कर दिया जाय।

(इ) स्थानीय कठिनाई के समय लगान बड़े पैमाने पर घटाया भी जा सकता है।"

ऊपर की प्रकाशित नीति हाथी के दिखाने के दाँत है। खाने के दाँत और ही है। इस अवतरण से तो ऐसा जान पड़ता है कि प्रजा का दरिद्र होना, बार-बार अकाल का पड़ना, करोड़ो की सख्या मे भारतवासियो का मरना सब कुछ भारतवासियों के अपने कसूर से है। लगान और मालगुज़ारी की सारी शिकायतें झूठ है। उसका एक अच्छा सा उदाहरण यह है कि गवर्नमेण्ट कहती तो है कि हम मुनाफे का ज्यादा-से-ज्यादा आधा लेते हैं परन्तु मातार ताल्लुका (गुजरात) मे लगान का ३२६ गुना कर लगाया गया। दो एक गाँवों मे ५१

प्रतिशत था, परन्तु बाकी सब गाँवों में ७१ से लेकर ९४ प्रतिशत तक कर लगाया गया था।[१] जो बातें इस सम्बन्ध मे सरकार के ही बताये हुए अंकों के आधार पर हम पहले दिखा आये है उनके ऊपर इस अवतरण से कैसी सफेदी हो जाती है। ज्यादा टीका-टिप्पणी की ज़रूरत नहीं है। सारांश यह कि इस सफेदी के होते हुए भी अत्यन्त कठोर और किसी प्रकार न मिटनेवाला सत्य यह है कि संसार में कोई देश न तो भारत-सा दरिद्र है, और न ऐसे भारी भूमि-कर की चक्की मे पिस रहा है। इस भारी कर के बोझ को सहना भी हमारे देश के लिए लाभकर होता, अगर यह धन हमारे देश के भीतर ही खर्च किया जाता। एक तो भारी कर का अत्याचार था ही, दूसरे उससे भी कहीं भारी अत्याचार यह है, कि देश का धन बाहर चला जाता है। इसपर बड़े भोलेपन से यह जवाब दिया जाता है कि आखिर हुकूमत का खर्च और सेना का खर्च कैसे चले? दरिद्र किसान इस जवाब से कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता। "अगर आप किफायत से खर्च नहीं कर सकते, तो आपमे बन्दोबस्त की योग्यता नहीं है। आपने हमसे कब पूछा कि हम इतना खर्चीला बन्दोबस्त करें या न करें। हमे आपकी सेवा नही चाहिए। आपके लुटाऊ कलेक्टर और कमिश्नर नही चाहिए। हमे तो चाहिए रोटियाँ, जिनके लिए हम तरस रहे हैं।"

१ "An Economic Survey" Young India, 1929 page 389 para 6

: १० :

किसानों की बरबादी

१. क्या थे क्या हो गये ?

हम जब अपने पहले की सुख-समृद्धि के इतिहास से आज की अपनी दशा का मुकाबला करते है, तो चकरा जाते है कि हम क्या थे आज क्या हो गए। हम सुख से रहते आए। मेहमानो से जी खोलकर मिलते रहे। मेहमान आते थे तो हम अपना परम सौभाग्य मानते थे। उनके साथ हमारे घरो मे कल्याण आता था। लक्ष्मी आती थी। परन्तु जबसे ये विदेशी व्यापारी मेहमान आए तभी से हमारा दुर्भाग्य शुरू हो गया। पहले भी विदेशियो से सम्बन्ध था। परन्तु वे सचमुच व्यापारी थे। लुटेरे न थे। ये कैसे मेहमान आये जिनकी निगाह सदा हमारे माल पर रही और आज भी, जब हम बरबाद हो गए है, उनकी लूट-खसोट घटने का नाम नही लेती।

२. लुटेरों की मेहमानी

जिस समय विदेशियो मे हमारा अधिक सम्बन्ध न था उस समय भारतवासियो की खत्ती बखारियो मे अन्न समाता न था, पशु यथेष्ट थे, दूध घी अच्छी तरह मिलता था, लोगो के शरीर पर मजबूत कपडे भी अच्छी तरह दिखाई देते थे और महँगी का तो कहीं नाम भी न था। उन दिनो हृदय मे कजूसी को जगह न मिलती थी। कोई मेहमान आ जाता था तो वह भार नहीं होता था। उसके आने

से किसान फूले नहीं समाता था। देशवासियों में सादगी, सन्तोष तथा आजादी दिखाई देती थी। किन्तु जबसे हम शिकारियों के जाल में उलझ गए, तबसे हमारा धन और माल जहाजों में लद-लदकर यहाँ से जाने लगा। पहले यहाँ की अनमोल कारीगरी की चीज़ें ही जाती थीं परन्तु अब कच्चा माल ढो-ढो कर जाने लगा। आज तो विदेशियों का बस चले तो वे भारत भूमि की आँतें तक निकाल-कर रेल में लादकर ले जायँ। और यही हो भी रहा है। सोना, चाँदी और मेंगनीज आदि धातुओं की खानों से जो माल निकलता है, वह कहाँ जाता है? अन्न, रुई, तेलहन यहाँ तक कि हड्डियाँ तक बिनवा बिनवा कर कहाँ जाती हैं? साथ ही मजेदार बात यह है, कि हमें बतलाया जाता है, कि अंग्रेजों को यह सब लूटने का परिश्रम हमारे ही लाभ के लिए करना पड़ता है। पाँच करोड़ की रुई जाती है और साठ करोड़ का कपड़ा आता है। बीच के पचपन करोड़ कहाँ चले जाते हैं? इस लूट से तो नादिरशाह की लूट अच्छी थी। उस लूट को हम लूट तो कह सकते हैं। यह कप्पड़शाह की लूट तो लूट भी नहीं कहलाती। वह तो यही कहता है कि भारतवासियों के शरीर की शोभा बढ़ाने के लिए उन्हें सस्ते कपड़े देने और उन्हें भाँति-भाँति के लाभ पहुँचाने के लिए ही वह यहाँ आया है। यही तो उसका जादू है। और सबसे बढ़कर अचरज की बात तो यह है कि भारत के किसान उसकी लूट में शामिल होते हैं और उसमें अपना लाभ समझते हैं।

३. उनका जादू

विदेशियों ने कहा कि तुम्हें खेती करना नहीं आता। तुम्हारे हल और औजार बहुत पुराने हैं, तुम्हारा खेती का ढंग पुराना है—जंगली

हैं। अब तुम्हे विलायती ढग के लोहे के हल काम मे लाना चाहिए। हमारा कृषि विभाग उसका प्रयोग करके दिखावेगा। हमारे अनेक सीधे-सादे किसान इस भ्रम मे पड़कर, कि साहब जो कहते है ठीक होगा, उनके कहे पर चले, परन्तु नतीजा उलटा ही हुआ। साहब कहते है कि किसानो के खेत विस्तार मे बहुत छोटे-छोटे है। इस तरह के खेतो मे वैज्ञानिक ढंग से खेती नहीं हो सकती। भाफ के इजन से चलनेवाले औज़ार इनमे काम नही दे सकते। इसलिए छोटे-छोटे किसानो को उजाड़ कर जमीन के बहुत बड़े टुकड़ो मे खेती करनी चाहिए। ठीक है, घर-घर मे छोटे-छोटे चूल्हे रखने मे हरेक घर की स्त्रियो को रोटी-पानी मे फँसना पड़ता है, और उनका बहुत समय नष्ट होता है। यदि इनके स्थान मे वडे-वडे भठियारखाने खोल दिये जायँ, तो अनेक स्त्रियो को फुसरत मिल जाय, उनका समय बचे और आर्थिक दृष्टि से भी लाभ हो। अक रखकर भी यह लाभ सिद्ध किया जा सकता है, इसलिए छोटे-छोटे चूल्हो को नष्ट करके रोटी-पानी के झझट से भी पीछा क्यो न छुडा लिया जाय? भारतवासी जंगली है। उनका उत्तराधिकार का कानून भी पुराने ढग का है। उसके कारण ज़मीन छोटे-छोटे टुकड़ो मे बँटती जाती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए एक नया कानून बनाकर छोटे-छोटे किसानो से ज़मीन छीन ली जानी चाहिए, और किसी वडे ज़मीदार को—चाहे वह गोरा हो या काला—दे देनी चाहिए। इससे पैदावार बढ़ेगी, वैज्ञानिक ढंग से खेती हो सकेगी और आधुनिक औज़ार काम मे लाये जा सकेंगे। औज़ार सब विलायत से आयेंगे, टूटें फूटेंगे तो उनके कल पुर्जे भी वही से मँगाने पड़ेंगे। वैज्ञानिक खाद भी काम मे लाई जाय ताकि उसे बनाने और बेचनेवाली

कम्पनियो को लाभ हो। उपाय तो बहुत बढ़िया है। इसकी बदौलत छोटे-छोटे किसान ज़मीन छोड़कर मज़े के मजूर बन सकते है। यह सब अर्थशास्त्र है। न गृहशास्त्र न नीतिशास्त्र, केवल अर्थशास्त्र—अर्थशास्त्र !!!

अर्थशास्त्र की दृष्टि से पशुपालन भी हानिकर है, इसलिए पशुओं को बेच देना चाहिए। कोई गाहक न मिले तो उन्हे कसाईखाने मे भेज दीजिए। वहाँ उनकी हड्डियाँ और चमड़े आदि की अच्छी कीमत खडी हो जायगी। इसके बाद ले आइए पम्प और तेल के इञ्जन और छोड़िये पुर चलाकर खेत सींचने का झंझट! कम्पनी-वाले खुद आकर इञ्जन चालू कर जायँगे इसका वे मेहनताना भी आपसे न माँगेंगे। आपको केवल किरासिन तेल लाना होगा और कुछ नहीं। बस फिर जितनी जी चाहे उतनी सिंचाई कीजिए। किसान इस तरह की बाते सुनकर अचम्भे मे पड जाता है, और इञ्जन लाने का विचार करने लगता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। वह सोचता है कि जो सबकी गति होगी, वही मेरी भी होगी।

४. हर बात में उन्होंने अपना फ़ायदा सोचा

पहले खेत मे जो पैदावार होती उसीमे सरकार का भाग रहता था। यदि फसल पैदा होती थी, तो सरकार लगान लेती थी और फसल न होती थी तो न लेती थी। बाद को इसमे झंझट दिखाई दी, इसलिए नगद मालगुजारी या लगान लेना स्थिर हुआ। किस जमीन का कितना लगान होना चाहिए यह निश्चित करना सरकार का काम है, इसमे किसान की सम्मति लेना ज़रूरी न रहा। वह इन बातो को क्या जाने? प्राचीन काल मे भारत के राजा और बादशाह पैदावार

का छठा भाग वतौर मालगुज़ारी के लेते थे, परन्तु अँग्रेज वहादुर ने इसे खूब वढ़ाया। किसान की मजूरी और लागत निकल आये तो गनीमत, बाकी सभी मालगुज़ारी मे चला जाता है। स्वर्गीय दत्त महोदय ने सरकारी प्रमाणो से ही साबित कर दिया है, कि सरकार फी सैकड़ा पचास से अधिक मालगुज़ारी लेती है और दिन पर दिन इसमे भी इज़ाफा होता जा रहा है। किसान के सिर का बोझ इस तरह धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता है। मालगुज़ारी तै करनेवाले अफसरो के खिलाफ कोई शिकायत सरकार मे सुनी ही नहीं जाती। किसान अगर खेत का सुधार कर खेती की बढ़ती करता है, कुआँ खुदवाता है और पैदावार बढ़ाता है, तो उसके कारण भी मालगुजारी बढ जाती है। ऐसी दशा में किसान को खेती की दशा सुधारने की इच्छा कैसे हो सकती है? इस तरीके के कारण किसान की माली हालत दिन-पर-दिन खराव होती गई, और कोई सहारा न रहने के कारण अकाल मे डटे रहने की ताकत घट गई। इसका नतीजा यह हुआ कि वह कर्जदार हो गया। जिसकी प्रतिष्ठा जितनी कम और अवस्था जितनी लाचार होती है, उसको व्याज भी उतना ही अधिक देना पड़ता है। इस कारण से किसानो की देनदारी धीरे-धीरे बढ़ती ही गई। इस समय उनके सिरपर कर्ज़ का बोझ इतना ज्यादा हो गया है, कि वे उससे दबे जा रहे है और उनके छुटकारे का प्रश्न बहुत ही कठिन वन गया है।

किसानो को इस देनदारी से छुटकारा दिलाने के लिए दक्षिण भारत मे एक कानून बनाया गया है, उसका नाम है "दक्षिण के किसानो को आराम पहुँचानेवाला कानून"। इस कानून के मुताविक पहले महाराष्ट्र मे और फिर गुजरात मे काम किया गया। इस

कानून से सरकार की लगान नीति की सख्ती मे किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। इसका नतीजा सिर्फ यही हुआ है, कि सङ्कट के समय किसानों को उधार देनेवाला भी अब कोई नहीं रहा। सरकार खुद किसानो को रुपया उधार देती है और तकावियाँ बाँटती है। इसकी किस्ते, नियम और व्याज आदि बातें इस तरह गढ़ी गई है, कि किसान पानी से निकलकर आग मे जा गिरा है। किसान को अपने पिता का प्रेत कर्म करना हो या कन्या का विवाह करना हो तो उसे तकावी नहीं मिल सकती। वह सिर्फ खेती के काम के लिए ही मिल सकती है। उसे वसूल करनेवाले भी माल मुहकमे के अफसर ही होते हैं। पत्र-पुष्पं से उनकी भली भाँति पूजा करनी होती है, एक ओर तकावी लेते समय किसान लूटा जाता है और दूसरी ओर उसे चुकाते समय कठिन से कठिन कायदो की पाबन्दी करनी पडती है। इससे किसान निराश हो जाता है। एक ओर महाजन ने रुपया देना बन्द कर दिया, दूसरी ओर सरकार सख्ती करने लगी। किसान को किसीका भी सहारा न रहा। उसे खेती या गृहस्ती के खर्चे के लिए वक्त बेवक्त कुछ-न-कुछ रुपयो की जरूरत पड़ती ही है, लेकिन अब वे कहाँ से लाये? किसानो की इस बेबसी से एक तीसरे ही दल ने लाभ उठाया। यह दल काबुली पठानो का था। हाथ मे छुरा लेकर यह दल कार्यक्षेत्र मे उतरा। काबुलियों के व्याज ने महाजन और सरकार को भी भुला दिया। रुपये दो या हड्डियाँ तुड़वाओ। यही काबुलियो का नियम था। महाजन किसान को एकदम चूसता न था। वह आँखें दिखाता था, नरम-गरम होता था, किन्तु किसान को जिन्दा रहने देता था। एक तो पुश्त दर पुश्त से लेनदेन, दूसरे हिन्दू समाज, इसलिए वह

अधिक सख्ती कर भी न सकता था। किन्तु काबुली को क्या? महाजनों का लेन-देन बन्द होने पर इस समय देहात मे काबुली जो लूट मचा रहे है, उससे किसानो की हालत का पता अच्छी तरह चल सकता है। किसान खेत छोड़कर कहाँ जाय और क्या करे? किसानो को आराम पहुँचानेवाले सरकारी कानून ने ही यह हालत पैदा की है। डाक्टर भण्डारकर जैसे सरकार के खैरख्वाह ने भी एक बार व्यवस्थापिका परिषद् मे काबुलियो की इन ज्यादतियो का वर्णन कर, प्रजा के प्रति सरकार के उपेक्षा भाव की निन्दा की थी। एक ओर मालगुज़ारी का बोझ दिन-पर दिन बढ़ता जा रहा है, क्योकि बिना उसके गोरे हाकिमो की बड़ी-बड़ी तनख्वाहे और भारतवासियो को कब्जे मे रखने और विदेशो पर चढ़ाई करने के लिए रक्खी हुई फौज का खर्च चलाना कठिन है और दूसरी ओर किसानो की देनदारी और लाभदायक कहे जानेवाले कानूनो का भयङ्कर परिणाम दोनो के बीच मे बेचारे किसान पिसे जा रहे है।

किसान को रुपयो की ज़रूरत तो पड़ती ही है। इसके लिए उसे ऐसी चीजें बोनी पड़ती है जिससे रुपये मिल सकें। बच्चो के लिए अन्न और पशुओ को चारा चाहिए। किंतु सरकार और काबुलियो के आगे वह इन चीजो का विचार तक नहीं करता। बच्चे और पशुओ का चाहे जो हो, सरकार का लगान और काबुली का पावना तो चुकाना ही होगा। इस प्रकार लगान देने के लिए, काबुली को खुश रखने के लिए, महाजन से कुछ अन्न पानी लिया हो तो उससे उऋण होने के लिए, किसाने को अपनी पैदावार—समूचे वर्ष के कठिन परिश्रम का फल बेच देना पडता है। न वह अनुकूल भाव की राह देख सकता है, न अनुकूल समय की। फल यह होता है कि उसे

अपने माल का पूरा दाम भी नहीं मिलता। मजबूर होकर सब मिट्टी के मोल बेच देना पडता है। चैत मे जिस समय गेहूँ पैदा होता है, उस समय उसे चार रुपये मन बेच देना पड़ता है, किन्तु बरसात मे खाने या कातिक मे बोने के लिए जब उसे उसकी ज़रूरत पड़ती है, तब वही छः रुपये मन खरीदना पड़ता है। नकद रुपये तो उसके पास रहते ही नहीं, इसलिए उसे यह भी उधार लेना पड़ता है। इन रुपयो का व्याज जोड़ने पर उसे पहले के भाव से दूना या इससे भी अधिक देना पड़ता है। इस तरह माली मुसीबत के कारण किसान को दूनी चोट सहनी पडती है। जिस समय किसानो को सरकारी किस्त चुकानी होती है, उस समय किसी हाट मे जाकर देखने से, किसान किस प्रकार अपना अन्न मिट्टी मोल वेचते है, इसका पता चल सकता है। सरकार की किस्त महाजन या कावुली से भी भयङ्कर होती है। कावुली तो अन्त मे मनुष्य ठहरा, किस्त मनुष्य थोडे ही है जो मान जायगी। किस्त माने मशीन। मशीन चलाने के लिए आकाश ढुढ कर या पाताल फोड़कर कही न कहीं से तेल लाना ही होता है। किस्त की बदौलत किसान के यहाँ साक्षात यमराज आ पहुँचते है। जिस समय उनका आगमन होता है उस समय किसान को अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तु वेच देनी पड़ती है। पशुओ का चारानी बेच देना पड़ता है, जो जिलाने के लिये रक्खा हुआ अन्न तक बेच देना पडता है और वह भी मिट्टी के मोल। बाज़ार भाव तो व्यापार के अनुसार घटता बढ़ता है। उससे फायदा उठाने के लिए वक्त का इन्तज़ार करना पडता है, किन्तु किस्त के समय मे घटा-बढ़ी न हो सकने के कारण किसान को तत्काल अपनी चीज़े बेच देनी पड़ती है। किसान को इन सब दुःखो से बचाने के लिए सरकार ने सहयोग समितियो की

स्थापना की। जिन किसानों की पचायतें तोड़कर उनका आपसी मेल-जोल नष्ट किया गया था, उन्हीं मे इन समितियो द्वारा आपसी मेल-जोल की कोशिश की गई। लेकिन इस उपाय का परिणाम भी शून्य मे ही आया। जिन गॉवो मे ऐसी समितियाँ कायम की गई, उन गॉवो को इनसे लाभ होना तो दूर रहा, उलटे किसान इन नई किस्म के सरकारी अफसरो के नीचे इस तरह दब गये कि जिन गॉवो मे ये समितियॉ अभी तक कायम है उनमे कोई दूसरा आन्दोलन चल ही नहीं सकता। अनुभव ने बतलाया है कि जिन गॉवो मे सहयोग समितियॉ है उन गॉवो मे खादी के आन्दोलन की जड़ नहीं जमने पाती। जम भी कैसे सकती है? किसान उस सहयोग समिति के नीचे कुछ-न-कुछ दबे ही रहते है। ऊपर से सुपरवाईजर और आर्गनाइज़र उन्हे लाल पीली ऑखें दिखलाया करते है। ऐसी अवस्था मे बेचारा किसान क्या कर सकता है? सहयोग समितियो से क्या-क्या लाभ हुए इसका वर्णन हम यहॉ करना नहीं चाहते। इस सम्बन्ध मे सिर्फ इतना ही कहना काफी है कि उनका व्याज, उनमे होनेवाली धूर्तता, उनकी किस्तें, उनकी सख्त निगरानी और उनकी गोलमाल से जहाँ-जहॉ वे कायम है वहॉ लोग बतरह ऊब उठे हैं।

५. मालगुज़ारी की तहसील

सरकार ने कानून बनाकर, सरकारी मालगुजारी साल मे दो किस्तो मे लेना तय किया है, किन्तु देहात मे मालगुजारी वसूल करनेवाले हाकिम या पटवारी उसे एक ही बार मे—एक मुश्त, वसूल करने की कोशिश करते है। वे किसान पर निजी तौर से दबाव डालकर उसे समझाते है कि, भविष्य मे शायद रुपये रहे न

रहे, सरकार का लगान तो आखिर देना ही होगा, सब एकसाथ ही क्यों नहीं दे देते ?" सरकार ने कानून बनाया कि फसल चार आने से कम हो तो लगान उस साल मुल्तवी रखकर अगले साल लिया जाय। किन्तु पटवारी और सर्कल इन्स्पेक्टरो की यह हालत है कि पैदावार कम होने पर भी वे अधिक ही लिख मारते हैं। इस सम्बन्ध मे न तो वे किसानो से पूछते है न कोई जॉच ही करते है। कानून आलमारियो की किताबो मे ही रह जाते है। ऊँचे अधिकारियो को छोटे कर्मचारियो की बात माननी ही पड़ती है। न मानें तो देहात मे सरकार की प्रतिष्ठा नष्ट हो जाय। गुजरात के खेड़ा ज़िले मे यही हुआ था। पहले सरकार को छोटे कर्मचारियो की बात रखनी पड़ी थी, किन्तु बाद को आन्दोलन के कारण उसे अपना विचार बदलना पड़ा।

छोटे कर्मचारी अक्सर रिश्वतख़ोर होते है। किसान को जब कोई काम पड़ता है तो उनकी पूजा अवश्य करनी पड़ती है। सरकारी क़ानून है किसी मिसिल की नकल ज़रूरी हो, तो एक आना देने से मिल सकती है, किन्तु चाहे जिस किसान से पूछिये, कि एक आना देनेपर क्या कभी समय पर काम हुआ है ? नाम बदलवाना हो, तो पहले पटवारी साहब को एक रुपया दक्षिणा देनी होगी। पटवारी की लड़की या तहसीलदार के लड़के का व्याह होने पर किसान क्या-क्या सौग़ात नज़राना देते हैं, सो सुनिए। सरकारी नौकरो को तरकारी, दूध और घी मे कितने पैसे खर्च करने पड़ते है ? उनके सफर के लिए सवारी का इन्तज़ाम कौन करता है ? घोड़े की लगाम टूट गई तो मोची हाज़िर है, तम्बू के लिए खूँटो की ज़रूरत हुई तो बढ़ई बसूला लिये खड़ा है, घोड़े के लिए घास की ज़रूरत हुई तो किसान

की लॉक (दानो समेत अन्न के पौधो के गट्ठे) मौजूद है, शीतल जल के लिए घड़ा या सुराही चाहिए तो कुम्हार लिये खड़ा है, हजामत या चप्पी करवानी हुई तो नाई हाजिर है, किसी दूसरे गाँव को चिट्ठी या खबर भेजना है तो बेगार के लिए चमार या भंगी मौजूद है, दूध की जरूरत हुइ तो अहीर खड़ा है। घी दूसरो को रुपये सेर नही मिलता, किन्तु हुजूर को रुपये का दो सेर देना होगा, क्योकि उनसे किसी दिन काम पड़ सकता है। इस तरह छोटे-बड़े सभी हुजूर मौज करते है, तब मुखिया और पटवारी ही क्यो बाकी रह जायॅ ? मुखिया का खेत निराना है, सभी मजूरी पेशा लोगो को दो-दो दिन मुफ्त काम करने का हुक्म निकाल दिया गया। खेत जोतना है तो किसी के हल बैल पकड़ मॅगाये गये, काटने का वक्त हुआ तो मजूर बेगार मे पकड़ लाये गये, और घोड़ी के लिए चारे की आवश्यकता हुई तो किसी कुरमी काछी को रोज हरियाली का गट्ठर पहुॅचाने की फरमाइश की गई। यह एक प्रकार का कर है। जिस तरह देसी रियासतें सरकार को कर देती है, उसी तरह किसानो से यह कर लिया जाता है। सरकार उन्हे जमीन पर रहने देती है, यह क्या कोई मामूली मेहरबानी है ? सरकार की यह हुकूमत की रीति बड़े से लेकर छोटे कर्मचारियो तक छन-छन कर चलती है। हरेक काम के लिए बडे से लेकर छोटे कर्मचारी तक का अहसान सिरपर चढ़ाना पड़ता है। इसका देशवासियों की माली हालत के सिवा चाल-चलन पर भी असर पड़ता है। जब इग्लैण्ड और भारत के आपसी सम्बन्धो का इतिहास लिखा जायगा, तब, इंग्लैण्ड क्या-क्या लूट ले गया, यह लिखा जायगा। किन्तु जो गॉव के गॉव नष्ट होगये हैं, लोगों की नीति छिन्न-भिन्न होगई है, जनता भी डरपोक बन गई

है, लोग झूठ बोलना सीख गये है, लोग मारतेखाँ को पूजने लग गये है, यह थोड़े ही लिखा जायगा। देश के ही मनुष्य शिक्षा प्राप्त कर कुल्हाड़ी के बेंट की तरह देशवासियो पर जो चोटे कर रहे हैं, वह थोड़े ही लिखा जायगा। इस देश की सभ्यता का नाश कर अँग्रेजी शासन-पद्धति ने जो बुराइयाँ की है, और देशवासियो को जिसतरह लोभी, डरपोक और नालायक बना दिया है, उससे लूट और कत्ल लाख दरजे अच्छे थे! तैमूर की लूट, नादिरशाह की कत्ल और अहमदशाह अब्दाली की चढ़ाई सभी इससे अच्छे थे।

६. पशुओं की जायदाद छिन गई

अब हम लोग जरा पशुओ पर दृष्टिपात करे। मनुष्य तो प्रलोभन मे पड़ गये किन्तु पशुओ ने कौनसा अपराध किया था? जिस प्रकार गेहूँ के साथ घुन पिस जाता है और सूखी चीजो के साथ हरी चीजे भी जल जाती हैं, वही अवस्था इनकी भी हुई। पशुओ को चरने के लिए भारत मे गोचरो की कमी नहीं थी, किन्तु ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के किरानी और डिरेक्टरो से लेकर आजतक जहाँ रुपयो के लिए हाय-हत्या मची हुई है उसपर भूखे राज्य के पास गोचर कैसे रह सकते हैं? गोचरों की जमीन लाट की लाट बेच दी गई, नीलाम करदी गई। धनवान व्यापारी और जमींदार पतग की तरह इन लाटों पर टूट पड़े। बेचनेवाले साहबो की मेमों को सोने की जजीरें पहनाई गई और लाल हाथ किये गये। इन लाटो की जोताई साधारण बैलों से कैसे हो सकती थी? हजारो बीघा जमीन कितने दिनों मे जोती जाती? घास की जड़ें भी खूब गहराई तक जमी हुई थी। बस विलायत से स्टीम प्लाऊ—इञ्जन से चलनेवाला

हल—मँगाया और बात की बात मे जमीन जोतकर बराबर करदी गई जिन लोगो के पशु इन जमीनो मे चरकर आशीर्वाद दिया करते थे. जिन गाँवो के निकट ये गोचर थे, और दूर-दूर के अहीर गड़रिये जो इन गोचरों से लाभ उठाकर भारतभूमि को सुजलां सफलां कहते थे, वे इस पैशाचिक हल को देखकर दंग रह गये। इस हल को चलाने के लिए एक गोरा साहब आया था। उसके साथ मे अनेक काले लोग भी थे, किन्तु वे सब साहब की टोपी पहनकर नकली साहब बन गये थे। इन सबको देखकर देहातियों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

खैर किसी तरह ये लाट जोते गये, घास की जड़ें उखाड़ फेंकी गई और उनके स्थान मे कपास बोई गई। इस कपास के बोनेवाले मालामाल होगये और सरकार को भी काफी आमदनी हुई। पहले तो नीलाम मे लाभ हुआ, फिर मालगुजारी मे बढ़ती हुई। किन्तु दूसरी ओर लाटवाले और आसपास के ग्रामवासियो मे झगड़ा होने लगा। जो लोग वहाँ पशु चराने जाते, उन्ही से लड़ाई होती। लाट-वालो ने देहातियो को दबाने के लिए पठानो को नौकर रक्खा। इसके फलस्वरूप वहाँ दगे और हत्यायें हुई। किन्तु इनका कौन हिसाब ? हत्याओं की ओर कौन देखता है ? जिन लोगो के पुश्तैनी हक छिन गये, उनमे से कुछ लोगो ने लूटमार का पेशा इख्तियार करके मौके-बे-मौके लाटवालो को तंग करना शुरू किया। जिन साहबों ने यह आग लगाई थी, वे शाही महलो मे बैठे हुए चैन की बशी बजा रहे थे और देशवासियो की इस प्रकार दुर्गति हो रही थी। यह तो हुई मनुष्यों की बात। वे पशु कहाँ गये, जिनके लिए प्रकृति ने यह भोजन सुरक्षित रक्खा था ? चारे की कमी के कारण किसान ने

उनका ज्यादा तादाद में रखना उचित न समझा। उसे मजबूर होकर दो बैल और एक आध भैंस रखनी पड़ी। शेष सभी पशु उसने बेच दिये। दुबले पशु कसाईखाने और अच्छे पशु ब्रेजिल चले गये। किसान को रुपये काफी मिले, पर वे दो ही दिन में काफूर होगये। इस प्रकार पशु भी चले गये और रुपये भी न रहे। रह गये केवल एक दूसरे को आँखें दिखाते हुए ग्रामीण और लाटवाले। इस योजना का सुन्दर नाम रक्खा गया—डेवेलपमेण्ट स्कीम अर्थात् खेती की उन्नति करनेवाली योजना। इसने सारे गोचरों और पड़ी हुई जमीन को खेत बना डाला। इस अमरीकन तरीके को प्रचलित करने के लिए सरकार को धन्यवाद दिया गया। भारत के पशु मर मिटे, किन्तु इस योजना से भारतमन्त्री को आनन्द हुआ। भारत की उन्नति हुई। यह सब आजकल के अर्थशास्त्रों के फेर में पड़कर हुआ।

सरकार पाँच-पाँच वर्ष में पशुओं की गिनती के अंक प्रकाशित करती है। उन्हे देखने से इस बात का पता चल सकता है, कि भारत में पशुओं की संख्या दिनों दिन किस प्रकार घटती जा रही है। किसी किसान के यहाँ बैल ही नहीं होते। वह माँग-जाँच कर या भाड़े पर लाकर काम चलाता है। किसी के पास एक ही बैल होता है वह दूसरे को साझीदार बनाकर काम चलाता है, किन्तु इनसे खेत बोने का काम ठीक समय पर नहीं हो पाता। किसी किसान के यहाँ बैलों की अच्छी जोड़ी होती है, तो उसका मूल्य दो ढाई सौ रुपये आँका जाता है। सब किसान ढाई सौ की जोड़ी कैसे ले सकते हैं? बैलों की अच्छी जोड़ी रखना आजकल हाथी बाँधना समझा जाता है। अच्छी नस्ल के पशु घटते जा रहे हैं। कुछ दिनो में उनका पता भी न रहेगा। जिस प्रकार कई किस्म के भारतीय घोड़ों का निशान

संसार से मिट गया है, उसी तरह, यह हुकूमते चलती रही तो, बैलों की भी अच्छी नस्ले लोप हो जायँगी। केवल गुजरात का उदाहरण लीजिए। वहाँ अब सिन्धी लोग बैल बेचने जाते है। जो गुजरात किसी समय एक उद्यान रूप था, जिस गुजरात मे गोचरों की कोई कमी न थी, जिस गुजरात के बैल बढ़िया माने जाते थे, उसी गुजरात के लोगो को अब सिन्धियो से बैल ख़रीदने पड़ते है।

आजकल एक गाय रखना भी भारी पड़ता है। पहले किसी ब्राह्मण का घर बिना गाय का न रहता था, किन्तु अब महँगे दाम की घास और दाना खिलाकर गाय रखना नहीं बन सकता। पशुओ को खिलाने मे भी अर्थशास्त्र देखा जाता है। अहीर गाये पालकर क्या करे? उन्हे क्या खिलाएँ? उन्हे बेच देने के सिवाय और कोई चारा ही नहीं दिखाई देता। बेचने से अच्छी रकम मिलती है। मांस का भी मूल्य मिलता है, चमडे का भी मूल्य मिलता है, हड्डियो का भी मूल्य मिलता है, खुर और सीगो का भी मूल्य मिलता है। पशु को ज़िदा रखने मे जितना लाभ है, उसको मार डालने मे उससे कहीं अधिक लाभ है। इस प्रकार घर मे अर्थशास्त्र दाखिल हुआ। सरकार ने इसके लिए कसाईखाने खुलवा दिये। अकेले बम्बई का ही उदा-हरण लीजिए। कोई कह सकता है, कि वहाँ कसाईखाने मे प्रति वर्ष कितने पशुओ की हत्या की जाती है? सरकार की ओर से इसका विवरण प्रकाशित होता है। पाठक उसे देख सकते है। बतलाइए, अब घी और दूध कहाँ से लाया जाय? कैसे खाया जाय? खाइए घी के स्थान मे वेजीटेबिल प्रोडक्ट (वनस्पति घी) और दूध के स्थान मे नेल्सन आदि का जमाया हुआ दूध। भारत के बच्चे बिना दूध के तडप रहे है, किन्तु किससे शिकायत की जाय? गोचरो को नीलाम

करने का साहवा स था उन्हे खेत बनाकर मालदार बननेवाले देश वासियों से ? गोचरो की कौन कहे, गुजरात के मातर तालुके में तुलसी के बन थे। वहाँ की तुलसी प्रति वर्ष गोकुल-मथरा और काशी के देवताओं पर चढ़ाई जाती थी, किन्तु वे गोड़-गोड़ कर बराबर कर दिये गये और तुलसी के स्थान मे वहाँ कपास के पौधे लहराने लगे। यह कपास मन्चेस्टर और टोकियो गई। वहाँ से उसके रुपये आये। उन रुपयों से हमने विलायती कपड़ा खरीदा और जो बचा उससे साबुन, तेल, फुलेल और मौज शौक की हजारो चीजे लीं। दूध की क्या आवश्यकता है ? भारत के सुकुमार तपड़ते है तो उन्हे तडपने दीजिए।

७. जंगल भी लुट गये

मनुष्य और पशुओ की अवस्था देख चुके। चलो, अब जरा वृक्षो के पास चले। बताओ भाई तुम्हारे क्या हाल है ? वृक्ष माने प्रकृति का बनाया हुआ बँगला। उसमे न जाने कितने जीव जन्तु विश्राम करते हैं। किन्तु जरा सोचिए कि प्रतिवर्ष इस प्रकार के कितने वृक्ष कटते है। माना कि मिल और जिनो के लिए लकड़ी की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु क्या इनके लिए नए वृक्ष भी रोपे जाते है ? अँग्रेजी मे एक कहावत है कि "वृक्ष रोपने से स्वर्ग मिलता है।' जरा इस सूत्र के अर्थ पर विचार कीजिए। बड़े शहरों मे रहनेवाले लोग देहातो से लकडियाँ और कोयला माँगते है। खैर कोई हर्ज नहीं, किन्तु क्या शहरातियो को कभी यह बात भी सूझती है कि वर्ष मे कम से कम एक वृक्ष तो कहीं लगवा दें ? सम्भव है कि सूझती हो पर वे वृक्ष कहाँ लगाये ? तिमंजिले पर, जहाँ रहते हैं वहाँ ? उनके पास तो बिस्वा भर भी जमीन

नहीं है। वे तो बिना मकान के रईस है। वे तो यह भी नहीं जानते कि कोयले के जो बोरे पर बोरे चले आ रहे हैं ये कहाँ से आ रहे है? बम्बई सरकार ने महुओ के सबन्ध मे एक कानून बनाया है। महुओ से शराब बनती है, इसलिए घरो मे उनका रखना जुर्म करार दिया गया है। जब महुए घर मे नही रक्खे जा सकते तब वृक्ष ही रख कर क्या किया जाय? रुपयो के लिए तो हाय-हत्या सदैव मची ही रहती है। ऐसी दशा मे महुओ के वृक्ष कब तक अपनी खैर मना सकते है? केवल खेड़ा जिले मे पाँच-सात वर्षों मे जितने महुए काटे गये है, उनकी कल्पना करना भी कठिन है। इनके स्थान मे नए वृक्ष कितने लगाये गये? विज्ञान हमे बतलाता है कि जहाँ वृक्ष कम होते है वहाँ वर्षा भी कम होती है। और जहाँ वृक्ष अधिक है वहाँ वर्षा भी अधिक होती है। वर्षा क्यो नही होती? इस सम्बन्ध मे भली भाँति विचार करने पर यही मालूम होता है कि हमारे देश मे जितने वृक्ष काटे जाते है उतने लगाये नही जाते। जर्मनी मे इस आशय का एक कानून है कि जिस दिन राजा का जन्म दिन हो उस दिन प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री को एक वृक्ष अवश्य रोपना चाहिए। किन्तु इस देश मे ऐसे कानून कौन बनाए? लावारिस देश में किसे किसकी गरज़ है? जगलो से सरकार को आमदनी होती है। कुछ जगल रिजर्व रखकर बाकी काटे जाते है। इनका व्यापार करने के लिए टिम्बर मर्चेण्ट (चीरी हुई लकड़ी के सौदागर) पैदा हुए है। रेल का विस्तार दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। पटरी के नीचे रखने के लिए स्लीपरो की ज़रूरत पडती है। इसके लिए भी जगलो पर ही शनि दृष्टि डाली जाती है। ज्यो-ज्यो जगल कटते जायँगे और जमीन साफ होती जायगी, त्यो-त्यो खेती की उन्नति के लिए डेवेलप-

मेण्ट स्कीमे बनती जायँगी। इसे गनीमत ही समझना चाहिए कि कुछ जंगल रिजर्व रक्खे जाते है, किन्तु यह भी केवल इसलिए किया जाता है कि लकड़ी की मॉग होने के कारण सरकार को इन जगलों से लाभ होता है जिस दिन सरकार को मालूम हो जायगा, कि इसमे कोई लाभ नहीं है बल्कि ज़मीन के लाट बनाकर देने मे ज्यादा लाभ है, उसी दिन ये भी साफ हो जायँगे।

यह सब रोना रोने का तात्पर्य यह है कि हमारा देश अनाथ हो गया है। लोग अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार अपना-अपना ढोल बजा रहे है। बेचारा किसान इन सबो के बीच मे मृत्युशैय्या पर पड़ा है।

एक ज़रूरी बात कहनी रह गई। भारत का माल विदेश चले जाने के कारण भूमि की उपजाने की ताकत भी बहुत घट गई है। साधारण नियम यह है कि ज़मीन से जितना लिया जाय, दूसरे प्रकार से उनमे उतना ही डाला जाय। भारत से प्रति वर्ष अडी, सरसो, तेलहन, चमड़ा, हड्डियाँ और गेहूँ आदि कीमती वस्तुएँ लाखो टन विलायत जाता है, परन्तु उनके बदले ज़मीन मे क्या पड़ता है? अनेक स्थानो मे तो किसानो को लकड़ियाँ नही मिलती इसलिए वे गोबर के कडे बनाकर जलाते है। ऐसा करने से सोने-चाँदी जैसी यह खाद भी नष्ट हो जाता है। इन्हीं सब कारणो से ज़मीन की उपजाने की ताकत दिन-दिन घटती जाती है। एक तो किसान की माली हालत खराब, दूसरे उसके बैल अधमरे, तीसरे उसकी पैदावार का एक आना भी घर मे न रहने पाये, ऐसी अवस्था मे किस प्रकार क्या डालकर वह ज़मीन की उपजाने की ताकत कायम रख सकता है? सरकार का कृषि-विभाग कहता है, कि उसे विदेशियो से कृत्रिम खाद खरीदनी चाहिए जिससे कि और भी पैसे विदेशियो के हाथ लगे।

: ११ :

दरिद्रता के कड़ुए फल

१. दरिद्रता की हद

अभी संवत् १६८६ मे ही एक समाचार छपा था कि पार्लमेण्ट का कोई मजूर सदस्य भूख से व्याकुल होकर सभा-भवन मे ही बैठे-बैठे बेहोश होगया। यह मजूर सदस्य बड़ा दरिद्र था। क्योकि इसकी सालाना आमदनी कुल ४०० पौण्ड अर्थात् ५२२३) रुपये थे। पार्लमेण्ट के प्रभुओ ने तरस खाकर ५० पौण्ड अर्थात् ६६७) रुपये और बढ़ा दिये, क्योकि शायद इस गरीब सदस्य को पॉच-छः प्राणियो के बड़े परिवार का खर्च उठाना पड़ता था।[१] ब्रिटिश पार्लमेण्ट की निगाहो मे यह मजूर सदस्य जिसकी आमदनी ४४४) मासिक थी, बहुत दरिद्र था, और उसकी आमदनी खर्च के लिए काफी न थी। यहाँ के लोगो की आमदनी संसार के सभी देशो से अत्यन्त कम है। सिर पीछे ३७) रुपये सालना से कम नहीं है। अगर १४-१५ रुपये रोज़ कमानेवाला पार्लमेण्ट की नज़रो मे गरीब है तो ६-७ पैसे रोज़ कमानेवाला क्या होगा? उसे किस कोटि मे रक्खेंगे? दरिद्रता की भी एक हद होती है। हमारी समझ में जिस आदमी को जीवन की रक्षा के लिए खाना, कपड़ा और रहने की जगह भर

१ यह समाचार कई पत्रों मे छपा था, परन्तु न तो मैने इसका कोई खण्डन देखा, और न इसके अधिक वृत्तान्त मिले।

मुश्किल से मिले, वह बिना ऋण लिये कभी अपने यहाँ आये हुए मेहमान को खिला न सके, या किसी मंगत को भिक्षा न दे सके वह 'दरिद्र' है। परन्तु यह दरिद्रता की हद आजकल की नहीं है। यह ब्रिटिश राज मे इस दर्जे पर पहुँच गई है कि हम पहले ज़माने मे दरिद्रता की जो परिभाषा करते थे वह भारत के आजकल के मध्यवर्ग पर लगती है। जिनकी आमदनी साल में पाँच छः सौ रुपये से कम नही है, या यो कहिए कि जो लोग सालभर मे लगभग उतना कमा सकते है, जितना कि पार्लमेण्ट का दरिद्र मजूर सदस्य हर महीने पाता है। जिन लोगो की आमदनी साल मे ५००) से कम है उनके लिए 'दरिद्र' से भी अधिक दरिद्रता की हद बतानेवाला शब्द होना चाहिए। हमारी समझ मे वह शब्द 'कगाल' है

हर आदमी यह अधिकार लेकर दुनिया मे पैदा होता है, कि वह अपने शरीर को भला-चङ्गा रक्खे और अपने परिवार को और समाज को, देश को और साथ ही अपने को मन, वचन, कर्म से अधिक-से-अधिक लाभ पहुँचावे और अधिक-से-अधिक सुख दे, और इन बातों को पूरा करने के लिए उसे पूरी-पूरी योग्यता और स्वतन्त्रता का अवसर मिले। समाज मे इन जन्म-सिद्ध अधिकारो- को काम मे लाने के लिए उसका रहन-सहन एक निश्चित ऊँचाई और अच्छाई का होना चाहिए। हमारे देश का रहन-सहन अनादि काल से बहुत सादा चला आया है। हमारे मजूर और किसान मोटर और विमान रखनेवाले कभी न थे, परन्तु ब्रिटिश राज्य से पहले इस दर्जे की दरिद्रता भी न थी। किसान लोग खाने-पीने से खुश थे।

अमेरिका का एक प्रामाणिक लेखक 'दरिद्रता' की परिभाषा यो

करता है:—"दरिद्रता जीवन की वह दशा है जिसमें आदमी, अपने कम आमदनी के या बेसमझी के ख़र्चे के कारण ऐसे रहन-सहन से गुजर नहीं कर सकता जिसमें कि अपने समाज की हद के अनुसार वह आप और उसके परिवारवाले उपयोगी काम कर सकें। और वह आप शरीर से और मन से पूरा-पूरा उपयोगी बन सके।" वही लेखक कहता है कि "कंगाल होना जीवन की वह अवस्था है जिसमें आदमी पूरा-पूरा या थोड़ा-बहुत अपने खाने-कपड़े के लिए ऐसे किसी आदमी का मोहताज हो जो स्वभाव से या कानून से उसका सहायक न समझा जाता हो।"[१]

हमारी समझ मे श्री गिलिन की ये परिभाषायें बिलकुल साफ है। अगर उन्होंने कम आमदनी या बेसमझी के खर्च की शर्त न लगाई होती तो 'दरिद्रता' की उनकी परिभाषा हमारे गुलाम देश के लिए भारतीय धन कुबेरो पर भी लग सकती थी। स्वर्गीय गोखले ने कहा था कि भारतवर्ष मे ब्रिटिश राज ने तरक्की के रास्ते को ऐसा बन्द कर रक्खा है कि यहाँ के ऊँचे से ऊँचे आदमी को झुक जाने को लाचार कर देता है। यहाँ कोई आदमी पूरी उपयोगिता को पहुँच ही नही सकता परन्तु गिलिन की परिभाषा हमारे यहाँ के पहली श्रेणी के लोगो को छोडकर बाकी सारे देश पर लग जाती है। इस तरह भारतवर्ष की साढ़े नन्यानबे प्रति सैकड़ा आबादी दरिद्र है। जिनको अपनी मेहनत मजूरी से आधे पेट या दूसरे तीसरे दिन भी भोजन मिल जाता है, उन दरिद्रो मे भी इज्ज़त का खयाल इस दरजे का है कि वे किसीके सामने हाथ पसारने से मर जाना ज्यादा कबूल करते है।

१. Gillin, J L., "Poverty and Dependency" Pp 24, The Century Company New York, 1926. (A. W. Hayes की Rural Sociology, Longmans, 1929. Pp. 430 पर उद्धृत)

वे अपनी आँखो के सामने अपने प्यारो का भूख से तड़पना देखते हुए भी भिक्षा माँगने का अधम काम कबूल नहीं करते। इतना होते हुए भी बत्तीस करोड़ की दरिद्र आबादी में तीस लाख से कुछ ही ज्यादा भिखमंगो, अवारो, वेश्याओ आदि लाचार निर्लज्जो का होना कोई अचरज की बात नहीं है।

दरिद्रता के इस स्थूल रूप पर विचार करने के बाद हम आगे क्रम से इस बात पर विचार करेंगे कि इस घोर अनुपम दरिद्रता के क्या-क्या बुरे असर राष्ट्र पर पड़ चुके है, हम किन-किन कडुवे फलो का अनुभव कर चुके हैं।

२. आबादी पर प्रभाव

दरिद्रता का सबसे बुरा असर आबादी पर पड़ता है।

१. भूख के सताये हट्टे-कट्टे काम करनेवाले गाँवो से भागकर, नज़दीक और दूर के शहरो मे चले गये और कुली का काम करने लगे, चाय के बागो मे गुलामी करने लगे या दूर-दूर विदेशो में चले गये; और वहीं मर खप गये। इस तरह जो खेती के काम मे कुशल थे गाँवो से निकल गये, और जो काम मे कुशल नहीं थे रह गये, जिससे खेती का काम दिन-ब-दिन बिगड़ता गया। गरीबी के कारण बालको को शिक्षा न मिल सकी, और गाँवो मे पढ़ाने का बन्दोबस्त न हो सका।

२. कुछ तो शिक्षा न मिलने से और कुछ पूरी सफाई और तन्दुरुस्ती का बन्दोबस्त न हो सकने से, जिसमे धन बिना काम नहीं चल सकता था, अनेक तरह के रोग फैल गये, जिनसे आये दिन अनगिनत आदमी मरते जाते है, और आबादी घटती जाती है।

३. दरिद्रता के कारण अकाल पड़ जाता है, और लोग भूखो मर जाते है। अन्न के न होने से लोग नही मरते। अड़ोस-पड़ोस के बाज़ारो से गाड़ियो अन्न आता है, और बराबर बिकता रहता है, परन्तु अकाल से पीडित भुक्खड़ो के पास खरीदने को दाम नहीं होता, इसीलिए भूखो मर जाते है। पैसे सस्ते हैं, फिर भी किसानो को कोई काम ही नहीं मिलता, जिससे वे पैसे कमा सकें। जिस साल अच्छी फसल होती है, उस साल तीन महीने से लेकर छः महीने तक उन्हे काम रहता है, और खेत मजूरी देता है। जिस साल फसल नहीं होती, उस साल बारह मास की बेकारी है। मजूरी कौन दे? असल मे अन्न का अकाल नहीं है। मजूरी के थोड़े अकाल मे तो किसान सारा जीवन बिताता है, पूरा अकाल तो उस समय होता है, जब फसल भी जवाब दे देती है।

४. दरिद्रता के कारण आपस के लड़ाई झगड़े होते है, परिवारो मे अलग गुजारी हो जाती है, और अलग होनेवाले अपना अपना खर्च न सँभाल सकने के कारण उजड़ जाते हैं, खेती-बारी टूट जाती है, इस तरह गाँव की आबादी घटती जाती है।

३. आदमियों पर प्रभाव

दरिद्रता सब दोपो की जड़ है, जिसके पास धन है वही कुलीन समझा जाता है, वही धर्मात्मा माना जाता है, वही विद्वान और गुण-ग्राहक होता है, उसीकी बात सब लोग चाव से सुनते है, लोग उसके दर्शनो को जाते हैं। दरिद्र को कोई नही पूछता।

दरिद्रता के कारण—

१. हौसले के साथ लोगो मे किसान मिलता-जुलता नही, उसमें बेढगापन आ जाता है।

२. धूर्तों के बहकाने में जल्दी आ जाता है। जितनी चाहिए उतनी सफाई नहीं रख सकता।

३. खाने को न वक्त से पाता है और न उचित मात्रा में पाता है इससे दुबला और कमजोर हो जाता है। उसकी चाल सुस्त हो जाती है, भरपूर मेहनत नहीं कर सकता, थोड़े से काम में थक जाया करता है, भाँति-भाँति के रोगों का शिकार होता है, उसका जीवन कम हो जाता है।

४. उसका हौसला दिन-ब-दिन पस्त होता जाता है और रहन-सहन का परिमाण घटता जाता है।

५. बाल-बच्चों के सांसारिक बोझ से जल्दी छुटकारा पाने के लिए थोड़ी ही उम्र में ब्याह कर देता है और पास की नातेदारियों में ही ब्याह करके वंश को और भी खराब कर देता है।

६. ब्याह न कर सकने के कारण व्यभिचार में फँस जाता है और वर्णसंकर पैदा करता है। बच्चे बहुत पैदा होते हैं परन्तु पैदाइस के समय काफी मदद न मिलने के कारण बहुत से बच्चे सौर में ही मर जाते हैं और दूध आदि पालन-पोषण का सामान न मिलने से छुटपन ही में बच्चे माता की गोद सूनी कर देते हैं।

७. अनेक दुखिया भुक्खड़ नातेदार, जिनको कहीं ठिकाना नहीं लगता, गरीब किसान के घर जबरदस्ती आकर रह जाते हैं। इस तरह उसके कष्ट और भी बढ़ जाते हैं।

८. उसका कुटुम्ब अक्सर बड़ा होता है। जितना ही बड़ा कुटुम्ब होता है सिर पीछे उतनी ही बेकारी बढ़ती है।

९. वह ज्यादा पोतवाला अच्छा खेत नहीं ले सकता। खराब खेत ज्यादा मेहनत चाहते हैं जो वह बेचारा कर नहीं सकता।

१०. चिन्ताओ से उसका दिमाग़ ख़राब हो जाता है।

११. उसमे धर्म-भाव और देश-भक्ति के हौसले नहीं रह सकते।

१२. उसे देश की दशा का और अपनी दशा का ज्ञान नहीं रहता, इसलिए चुपचाप दु:ख मे घुलता रहता है, और कर्म ठोककर रह जाने के सिवा कोई उपाय नहीं कर सकता।

१३. स्वभाव चिडचिड़ा हो जाता है, आये दिन परिवार के भीतर और बाहर झगड़े होते रहते हैं, जिसका फल होता है फौज-दारी मुकद्मेबाज़ी और गृहस्थी का सत्यानाश।

१४. भॉति-भॉति की चिन्ताओ से छुटकारा पाने के लिए तरह-तरह के नशो की कुटेव लग जाती है। तमाखू, गॉजा, भङ्ग, शराब, ताडी, अफीम आदि के पीछे तबाह हो जाता है।

१५ औरो की निगाहो मे उसकी इज्ज़त घट जाती है।

४. रहन-सहन पर असर

हमारे देश के किसानों का रहन-सहन कितना नीचे गिर गया है इसे सब जानते है। उसके पास जैसे खाने का टोटा है वैसे ही पहनने का भी। उसके पुरखो के समय मे जब चरखा चलता था तब उसे कपड़ो का टोटा न था, आज खाना कपड़ा दोनो का टोटा है। तीसरी ज़रूरी चीज़ घर है। अब वह घर भी अपने लिए दरिद्रता के कारण अच्छा नहीं बना सकता। वह जीते जी नरक भोग कर रहा है।

अपनी दरिद्रता के कारण—

१. अपनी उपज का सबसे अच्छा माल बेच डालता है, और खराव-से-खराब अपने खर्च के लिए रख लेता है। जो शायद बिक ही नहीं सकता या लाचारी उसे बेचने नही देती।

२. उसका भोजन अक्सर बे-नमक का होता है। बेचारा नमक तक खरीदने की सामर्थ्य नहीं रखता। जिसकी आमदनी ६ पैसे रोज़ से भी कम हो, वह नमक मिर्च कहाँ पावे।

३. उसके भोजन मे पालन-पोषण का तत्त्व बहुत कम होता है।

४. वह काफी भोजन नहीं पाता, कभी आधा पेट पाता है, और कभी वह भी नहीं।

५. उसे दूध, घी, मठा, तो क्या मिलेगा, उसके बच्चो को छाछ भी नसीब नहीं होती।

६. उसके ढोर भूखो मरते हैं, उनके लिए घर नहीं होता।

७. उसके घर उसे धूप बरसात आँधी तूफान और जाड़े से बचाने के लिये काफी नहीं होते।

८. जङ्गलो और पेड़ो पर कोई अधिकार न होने से उसे जाड़े के लिए काफी ईंधन नहीं मिलता, और वह लाचार हो उपले जलाने का आदी हो गया है, जिससे खेत के लिए उत्तम से उत्तम खाद वह चूल्हे मे जला देता है। परिस्थिति ने उसे भुलवा दिया है।

९. उसके पास काफी कपडा नहीं है, और जो है वह विलायती है, जो काफी टिकाऊ नहीं होता, मगर सस्ता होने के कारण लिया जाता है।

१०. उसकी खेती का सामान बढ़िया नही है, पूरी मेहनत करके भी उससे वह उतना अच्छा काम नहीं ले सकता, जितना कि अच्छे हल बैल से होता।

११. उसे अपने रोजगार के बढ़ाने का कोई साधन प्राप्त नही होता।

१२. मजूरी की दर बहुत कम होने से किसान को ऐसे काम

के लिए मज़दूर नहीं मिल सकते जिन्हे वह अकेला नहीं कर सकता और वहाँ लड़को और औरतो की मदद काफी नहीं होती।

१३. अपने खेतो पर जो मजूरी की जाती है उसका बदला भी बहुत थोड़ा मिलता है।

१४. वह गाय पाल नहीं सकता और न छोटे-मोटे घरेलू रोज़-गार कर सकता है, और करे भी तो दशा ऐसी है कि रोज़गार मे सफलता नहीं मिलती।

घर गृहस्थी मे किसान और उसका परिवार अपने दादा के समय मे आज की तरह बेकार नहीं रहता था। खेती से जो समय बचता था उसमे मज़बूत हाथ-पैरवाला किसान और मेहनत के काम किया करता था। गाड़ी चलाकर थोक का थोक माल बाज़ार ले जाना, खॅडसाले चलाना, रूई धुनना, गाय भैंस आदि बड़े ढोर पालना, सन पटसन आदि बटना, टोकरियाँ बनाना आदि उनके तरह के काम देहातो मे सब तरह के लोग करते थे। इसके सिवा पेशेवाले किसान, कुम्हार, लुहार, बढ़ई आदि तो अपने काम करते ही थे, ये पेशेवाले तो थोड़ा बहुत अब भी अपना काम करते ही है। इनके सिवा इनके घर की स्त्रियाॅ और लड़के भी तरह तरह के काम करते थे। घर की गाय, बकरी, भेड़ आदि की सेवा मे लड़के बड़ी मदद पहुॅचाते थे। स्त्रियाँ और लड़कियाॅ दूध, दही, मक्खन आदि के काम करती थीं, आटा पीसती थीं, धान आदि कूटती थीं, मक्खन निकालती थी, चर्खा कातती थी। कपड़े सीना, रॅगना और बच्चो का लालन-पालन चौका-बासन रसोई ये सारे काम घर में होते थे। परन्तु आज गौवों का पालन करने का सामर्थ्य न होने से दूध, दही, मक्खन, घी का काम उठ गया है। चर्खा और ओटनी को उठ गये

दो पीढ़ी के लगभग हो गये। घी दूध और कपास का काम जो घर मे होता था, किसान के लिए बड़े लाभ की चीजें थीं। घी दूध से परिवार भी तृप्त होता था और पैसे भी आते थे। ओटनी और चर्खे से परिवार का तन भी ढकता था और पैसे भी आते थे। इसके सिवा पेशेवालो के गॉव के गॉव होते थे जो आज उजड़ गये है। जहॉ कहीं खद्दर बनाने की कला बढ़ी हुई थी, वहॉ कोरी, कोष्टी, तॉती और जुलाहे आदि बुनकरो की बड़ी-बड़ी बस्तियॉ थी। ये बस्तियॉ उजड़ गई। जो थोड़ी बहुत बची हुई है विलायती सूत मे उलझी हुई हैं। ग्वालो के गॉव के गॉव थे, जिनके यहॉ दूध घी का भी रोज़गार था और खेती भी होती थी। बहुत से ऐसे गॉव उजड़ गये और जो बचे हुए हैं उनकी दशा दरिद्रता से आँखो मे खून लाती है। यो गाँव-गॉव मे जहॉ सभी जाति और पेशे के किसान मिलजुलकर रहते थे, वहाँ दो एक घर खद्दर बुननेवालो के भी थे, और हफ्ते के दिनो मे जहॉ बाज़ार लगा करते थे, सूत कपास और खद्दर का लेनदेन और बिक्री हुआ करती थी। रोज़गार के अच्छा होने से लोगो के रहन-सहन का परिमाण बढ़ा हुआ था। रोज़गार टूट जाने से रहन-सहन का परिमाण गिर गया।

५. शिक्षा पर प्रभाव

पहले गाँव-गॉव मे टोल थे, पाठशालायें थी। गॉव के भय्याजी सब बालकों को पढ़ाते थे। गाँव के सभी किसान बालक थोड़ा लिखना-पढ़ना और हिसाब-किताब सीखते थे। टोलो, पाठशालाओ के खर्च के लिए माफी के खेत थे। उनकी आमदनी से पढ़ाई का खर्च चलता था। गॉववाले मास्टरो को सीधे देते थे। और अधिकांश

पञ्चायत के द्वारा सारा खर्च दिलवाया जाता था। पढ़ाई के लिए कहीं-कहीं घर होते थे, कहीं चौपालों मे जगह होती थी, कहीं मन्दिरो और मठों मे और कहीं-कहीं बागो मे। जब पंचायतों का अधिकार छिन गया, माफी खेत छिन गये, किसान दरिद्र हो गये, तब सारा बन्दोबस्त टूट गया। कुछ काल तक शिक्षा का महत्व समझनेवाले किसानो ने, अधिकांश इक्के दुक्के ने, अपनी ओर से बच्चो के पढ़ाने का प्रबन्ध जारी रक्खा। कहीं-कहीं बेहरी लगाकर कुछ समय तक पाठशालायें ठहरीं, परन्तु ठीक सगठन न होने से इस तरह के निजी उद्योग भी समाप्त हो गये। दरिद्रता के कारण—

१. गाँववाले बच्चो के पढ़ाने का बन्दोबस्त नही कर सकते। जो स्कूल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने कायम किये है वे बहुत कम है, दूर-दूर पर है, जहाँ छोटे-छोटे बच्चे नहीं पहुँच सकते, इसलिए देश के बच्चो की बहुत थोड़ी गिनती तालीम पा सकती है।

२. जिन थोड़े से बच्चो को तालीम दी जाती है, उन्हे किसानो के काम की कोई शिक्षा नहीं मिलती, क्योकि किसानो को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड मे शिक्षा के बारे मे अपनी नीति चलाने का कोई अधिकार नहीं है, और उनके पास व साधन नही है कि काम की शिक्षा दे सके।

३. वे अपने पढ़नेवाले बच्चो को खेती का काम नहीं सिखा सकते। पढ़नेवालो को ऐसी शिक्षा दी जाती है कि वह शिक्षा पाकर खेती आदि के कामो को नीच समझने लगते है। कस्बो और शहरो मे हलकी नौकरियो के पीछे ठोकर खाते फिरते है।

४. खेती की शिक्षा न होने से खेती का काम दिन पर दिन ख़राब होता जा रहा है।

५. किसान इतने ग़रीब हैं कि बच्चों के लिए किताबें मोल नहीं ले सकते।

६. वे अपने लिए कोई अखबार नहीं ख़रीद सकते, जिससे खेती का, रोज़गार का या दुनिया का कुछ हाल जान सकें।

७. वे देश के आन्दोलनों की ख़बर नहीं रखते।

८. वे अपनी ही दशा नहीं जानते, और न उसके सुधारने के लिए कोई आन्दोलन कर सकते हैं।

९. वे अपनी ओर से शिक्षक नहीं रख सकते जो उनके नेता का काम कर सके और प्रजाहित के कामों में मदद दे।

१०. वे आपस में से किसी को नेता के काम के लिए तैयार नहीं कर सकते।

११. उनकी बहुत बड़ी संख्या निरक्षर हो गई है, और निरक्षरता के जितने बुरे परिणाम हैं वे सब भोग रही है।

१२. बालकों को ऊँची शिक्षा का कभी अवसर नहीं मिलता।

१३. खेती की शिक्षा न मिलने से लाभ कम होता है। लाभ न होने से खेती का सुधार नहीं होता, सुधार न होने से दरिद्रता बढ़ती जाती है। दरिद्रता बढ़ते जाने से आगे शिक्षा की भी कोई आशा नहीं हो सकती। यह बड़ा ही दूषित भ्रामक चक्र है, जिसमें सारा देश फँसा हुआ है।

६. जायदाद पर प्रभाव

जब किसान खुशहाल था, तब उसकी गृहस्थी बड़ी होती थी, घर बड़े और हवादार थे, सब ऋतुओं के अनुकूल बने हुए थे। गोशाला थी, बाग़, कुएँ, तालाब, मन्दिर, चौपाल सब कुछ था। पशुओं

के चरने के लिए गोचर-भूमि अलग होती थी। किसान और उसके पशु खुश रहते थे। आज सारी दशा विपरीत है।

दरिद्रता के कारण—

१. वह हवादार और अच्छे घर नहीं बना सकता। जीवन के आवश्यक सामान नहीं जुटा सकता।

२ वह लाचार होकर उपले जलाता है, क्योंकि लकड़ी न खरीद सकता है, न निर्धनता के कारण पेड़ मोल ले सकता है, न जमींदार से पेड़ लगाने या काटने के लिए आज्ञा मोल ले सकता है और न विदेशी सरकार की बाधा के कारण जङ्गल से लकड़ी काट सकता है। इस तरह उसे खेत के लिए सबसे उत्तम खाद खोना पड़ता है।

३. उचित खाद के बिना खेत की पैदावार दिन-पर-दिन घटती जाती है।

४. वह खेत का मालिक नही है, और जानता है कि खेत की दशा बहुत अच्छी हो गई तो लगान बढ़ जायगा, या बे-दखली हो जायगी, या बन्दोबस्त पर सरकारी मालगुज़ारी बढ़ जायगी। इस-लिए खेत मे सुधार करने का उसे हौसला नहीं हो सकता।

५. वह अपने गाय, भैंस, बैल का ठीक-ठीक पालन-पोषण नहीं कर सकता।

६. जो पहले गोचर-भूमि थी वह अब खेत है। ढोरो की चराई का बन्दोबस्त अच्छा नहीं है जिससे ढोर बहुत दुबले हो गये है।

७ लोग गोपालन के रोज़गार मे टोटा होने से उस ओर ध्यान नहीं देते, इससे यह कारोबार चौपट हो गया है।

८. गो-वश-सुधार की रीतियाँ भूल जाने से ढोरो की नसल खराब हो रही है।

९. फलों का रोज़गार ठीक रीति से न होने के कारण लोगो का ध्यान अच्छे बाग़ लगाने या बाग़ की रक्षा पर नहीं है।

१०. आपस में लड़ाई-झगड़ा होने के कारण बहुत छोटे-छोटे हिस्सों मे बँटवारा हो रहा है, एक खेत घर के पास है तो दूसरा मील भर दूर, तीसरा उससे एक फर्लाङ्ग पर, इस तरह इकट्ठी खेती करने का मौका नहीं है। दूसरे सब मदो मे खर्च बढ़ता है, और रखवाली ठीक तौर पर नहीं हो सकती।

११. खेती के औज़ार पुराने और दकियानूसी हो गये है, और नये और अच्छे खरीदे या बनवाये नहीं जाते।

माली हालत किसानों की इतनी ख़राब है कि वे बाप-दादों की जायदाद को धीरे-धीरे खोते जाते हैं, उनके पास धन नहीं है कि अपनी भागती हुई जायदाद को चतुर साहूकार के चङ्गुल से बचा सकें।

७. तन्दुरुस्ती पर असर

पहले के किसान शहर के लोगों के मुकाबले अधिक हृष्ट-पुष्ट और तन्दुरुस्त समझे जाते थे, पर आज वह चलती-फिरती हुई ठठरियाँ हैं, जिनके चेहरे पर उदासी है। जान पड़ता है कि उन्होने हँसी-खुशी के दिन नहीं देखे है, और सीधे स्मशान की ओर चले जा रहे हैं। दरिद्रता के कारण—

१. अपनी तन्दुरुस्ती पर वे उचित ध्यान नहीं रख सकते।

२. कभी-कभी उन्हे खेतों मे कमर तोड़ परिश्रम करना पड़ता है, परन्तु साल मे अधिक बेकार ही रहना पड़ता है। इस असयम से वे बच नहीं सकते।

३. पोषण काफी नहीं होता, इसलिए जीवनीशक्ति कम होती और रोग का मुकाबला नहीं कर सकती।

४. रोग के कीड़े उनके शरीर में जल्दी फैलते और घर कर लेते हैं।

५. पेट के कीड़े और चुनचुने उन्हे ज्यादा होते हैं ।

६. ठीक भोजन न मिलने से तरह-तरह के चर्म रोग होजाते हैं।

७. फैलनेवाले रोग जब फैलते हैं तो काबू मे नहीं आते।

८. किसान लोग रोग की भयानकता समझते हुए भी उससे बचने का उपाय नहीं कर सकते।

९. कपड़ा काफी न होने से फसली बीमारियाँ होती रहती है।

१०. घरो मे काफी बचाव नहीं होता।

११. मलेरिया से बचने के लिए वे मसहरियाँ इस्तैमाल नहीं कर सकते।

१२. घरों मे हवा और रोशनी का काफी बन्दोबस्त नहीं हो सकता।

१३. खाने-पीने के लिए पानी बहुत गन्दा आता है। साफ और शुद्ध जल का बन्दोबस्त अनेक स्थानो पर नहीं हो सकता! तालाव का पानी हर तरह पर गन्दा होता है और कुएँ गहरे नहीं होते तो परनालो की गन्दगी कुएँ के पानी मे मिल जाती है। शुद्ध पानी का खर्चीला बन्दोबस्त नहीं किया जा सकता।

१४. स्वास्थ्य-रक्षा की शिक्षा उन्हे नहीं मिलती।

१५. बच्चे बड़ी सख्या मे मरते है।

१६. दवा-इलाज की सहायता नहीं मिलती।

१७. अच्छे वैद्य-हकीम गाँवो मे नही मिलते। बीमार होने पर दवा-इलाज का खर्चा उठा नहीं सकते।

१८. अस्पताल बहुत दूर पड़ते है।

१९. देहातो मे घूमनेवाले डाक्टर न तो समय पर पहुँच सकते है, न काफी मदद करते हैं, और न इस अनमोल मदद का लाभ ज्यादा लोग उठा सकते हैं।

२०. लोगो की औसत उमर घटकर २८ वर्ष हो गई है।

२१. शरीर के पोषण के लिए जितने पदार्थ चाहिएँ उनमे मुख्य नमक है। जो अनेक रोगो से रक्षा करता है, यह नमक आदमी को काफी नहीं मिलता, और ढोरो को तो बिलकुल नहीं मिलता, क्योंकि किसानो की थोड़ी आमदनी के लिए वह बहुत महँगा है।

२२. ढोरों मे बीमारियाँ फैल जाती हैं, मगर किसान इलाज नहीं कर सकता।

२३. जहाँ ढोर बाँधे जाते है वहाँ की काफी सफाई किसान नहीं कर सकता।

२४. बीमारियो से ढोर मर जाते है और दूसरे ढोरों में बीमारी फैला जाते हैं, इस तरह किसान का कई तरह का नुकसान हो जाता है।

२५. ढोरो की बीमारी मे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से मदद का लाभ बहुत कम उठा सकता है।

जब गाँव का बन्दोबस्त पचायत के हाथ मे था, गाँव मे वैद्य भी होते थे, और दवा-इलाज का बन्दोबस्त अपना होता था। उसके सिवाय शिक्षा ऐसी थी कि ग्वाले और गृहस्थ किसान शालिहोत्री और डाक्टर का बहुतेरा काम जानते थे। धाय का काम तात्कालिक चिकित्सा और दवा-दर्पण घर-घर बूढ़े किसान और घर की बाल-बच्चो वाली लुगाइयाँ इतना काफी जानती थीं, कि डाक्टर और अस्पताल की मोहताज न थी। परन्तु पुरानी शिक्षा की विधि उठ गई, और बस्ती के उजड़ने से भी परम्परा और अभ्यास दोनो की हानि हुई।

८. माली दशा पर प्रभाव

इस विषय मे तो पिछले पृष्ठो मे हम 'सरकारी लगान नीति', उसकी रकमे और उसके वसूल करने की विधि इत्यादि पर विचार कर चुके हैं। सारी दरिद्रता का कारण तो वह स्वार्थी नीति है जिसका व्यवहार भूमि-कर के सम्बन्ध मे किया जाता है। वही तो किसान की दरिद्रता का प्रधान कारण है। दरिद्रता के कारण—

१ सिंचाई का वह काफी प्रबन्ध नहीं कर सकता, और वर्षा के भरोसे रह जाता है। वर्षा न हुई तो फसल गई।

२. वह अकेले मेहनत करता है। मजूरी न दे सकने के कारण या मजूर न मिलने के कारण उसकी खेती जितनी चाहिए उतनी सफल नहीं होती।

३. पैदावार के मुकाबले लागत खर्च खेती मे ऊँचा पड़ता है, क्योकि वह अच्छे औज़ार नही काम मे ला सकता। उसके खेत दूर-दूर हैं और टुकड़े टुकड़े हैं। उसके बैल दुबले है, और अनाज इसी-लिए कम उपजता है।

४. ज़रूरत पड़ने पर उसके पास कोई जमा नही है, जो लगा सके। पहले ज़माने मे उसकी औरत के गहने उसके लिए बैंक के समान थे। अब वह गहने भी नहीं बनवा सकता।

५. लगान या मालगुज़ारी देने के समय उसे लाचार होकर साहूकार से कर्ज़ लेना पड़ता है, और खेत रहन रखना पड़ता है। किसानो पर लगभग आठ अरब के कर्ज़ लदा हुआ है।

६. आये दिन की मुकदमेबाज़ी से किसान परेशान रहता है, और अधिक से अधिक लुटता जाता है।

७. गाँजा, ताड़ी शराव की कुटेव में फँसता है, और तन मन धन और धर्म सब खो देता है।

८. शादी-ग़मी, काम-काज में वह अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च करता है, और कर्ज़ से लद जाता है।

९. वह अपने लिए ज़रूरी कपड़े भी नहीं खरीद सकता। उसकी खरीदने की ताकत वहुत कम हो गई है।

१०. कावुली, वलूची, पठान और दूसरे व्यापारी उसे जाड़े के शुरू में दूने-तिगुने दामों पर उधार कपड़े देकर ठगते हैं, और जाडा बीत जाने पर वड़ी कड़ाई से वसूल कर लेते हैं।

११. खेती के और समान भी वह नकद नहीं खरीद सकता। उधार के कारण उसे वहुत ठगाना पड़ता है।

१२. खेत की उपज दिन-दिन घटती जाती है। वह उपज वनाये रखने के लिए उपाय नहीं कर सकता।

१३. लगान की दर इतनी ऊँची है कि आधे से ज्यादा खेत का मुनाफा निकल जाता है, और उसे अपनी लागत का खर्चा और उसपर का सूद मुश्किल से मिलता है। फसल अच्छी न हुई तो वह भी गया।

१४. वह कॉंग्रेस का चन्दा नहीं दे सकता, और अपना प्रतिनिधि कॉंग्रेस से नहीं भेज सकता।

१५. गाँव में शिक्षा रक्षा और मन-वहलाव के लिए जो उपाय वह पहले कर सकता था, अव नहीं कर सकता।

१६. वुढ़ापे के लिए और अनाथो और विधवाओ के लिए कोई वन्दोवस्त नहीं कर सकता।

१७. आग लगने पर, वाढ़ आने पर और ओले पड़ने पर वह कोई उपाय नहीं कर सकता। बीमे के लिए उसके पास धन कहाँ है?

१८. उसकी औसत आमदनी छः पैसे रोज़ है। इतनी थोड़ी आमदनी पर वह आधा पेट मुश्किल से खा सकता है, और ज़रूरतो की कोई चरचा नहीं।

१९. वह साल मे औसत छः महीने तक बेकार रहता है। उस बेकारी की दशा को 'फुरसत' नहीं कह सकते। दरिद्रता के कारण इससे फुरसत का सुख वह नही उठा सकता।

२०. उसके अनेक रोज़गार छिन गये है। विदेशियो की चढ़ा-ऊपरी से, विदेशी सरकार होने के कारण उसके रोज़गारों की रक्षा होने के बदले विनाश हो गया है। कपास की खेती, ओटना, धुनना, कातना, बुनना बन्द हो गया है। खॅडसाले बन्द हो गई है, गोचर-भूमि के खेत बन जाने से और जीते हुए गाय-बैल के मुकाबले मे चमडा, मांस, चर्बी, हड्डी, सींग आदि से ज्यादा दाम मिलने के कारण गोवश का नाश हो गया, और ग्वालो का रोज़गार चौपट हो गया। ये सारे रोज़गार नष्ट हो जाने से किसान के आधे जीवन पर बेकारी की मोहर लग गई।

किसान की माली हालत लिखने लायक नहीं है। देखने को आँखे नहीं रह गई है। सोचने से कलेजा मुँह को आता है। इस माली हालत को हम शून्य नही कह सकते। यह शून्य से इतना कम है, कि आठ अरब रुपयो के आगे ऋण का एक बहुत मोटा-सा चिन्ह लगा हुआ है। यह माली हालत दरिद्रता के कारण नही है, बल्कि सारी दरिद्रता का कारण है।

९. धर्म पर प्रभाव

धन का उपभोग करते हुए जो आदमी ससार को असार समझ कर उसका त्याग करता है वह विरक्त कहलाता है, परन्तु ससार मे

विरक्त बहुत थोड़े हैं और होने भी चाहिएँ। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी संसार मे थोड़े ही होते हैं। सबसे ज्यादा संख्या ससार मे गृहस्थों की होनी चाहिए, जिनसे बाकी सबका पालन-पोषण होता है। धर्म की सबसे अधिक ज़िम्मेदारी गृहस्थो पर आती है। भारतीय किसान किसी समय बड़ा ही धार्मिक था। उसके द्वार से मंगन निराश होकर नहीं लौटता था। होम, जप, तीर्थ, पूजा, त्यौहार और उत्सव उसके जीवन के अङ्ग थे। संसार मे उसके बराबर सफाई से रहनेवाला कोई न था। उसकी ईमानदारी और सचाई जगत् मे प्रसिद्ध थी। वह अपनी बात पर मर मिटता था। उसके यहाँ स्त्री जाति का पूरा सम्मान था। पराई स्त्री को मां, बहन, बेटी समझता था। नशेबाज़ी की तरफ कभी आँख उठाकर भी न देखता था। जहाँ संसार के किसान मांस खाने के लिए पशु पालते थे, वहाँ भारतीय किसान अहिंसा—किसी प्राणी का जी न दुखाना और प्राणिमात्र से अपना आपा समझकर सच्चा प्रेम रखना—अपना परम धर्म मानता था। गाँवो की विशेष रूप से और पशुओ की साधारण रीति से रक्षा करता था। हम यह नहीं कहते कि भारत मे मांस खानेवाले न थे। परन्तु ससार मे और देशो के मुकाबले हमारे देश से मांस खाने की चाल बहुत कम थी, और इस कमी के कारण हमारे यहाँ के किसान ही थे। परन्तु आज क्या दशा है? दरिद्रता के कारण धर्म-बुद्धि नष्ट हो गई, और सदाचार के बदले कदाचार ने अपनी हुकूमत जमाई। दरिद्रता के कारण—

१. वह आवश्यक दान नहीं कर सकता।

२. तीर्थाटन नहीं कर सकता।

३. व्रत, होम, जप आदि भी नहीं कर सकता।

४. पूजा आदि नहीं कर सकता। और इन कामों मे शिथिलता आने से उसके मन से धीरे-धीरे श्रद्धा उठ गई, इसलिए वह मन्दिरो मे दर्शनो और जल चढ़ाने के लिए बहुत कम जाता है।

५ खेती के सम्बन्ध मे होनेवाले अनेक यज्ञ वह नहीं करता।

६ पुरोहितों की रोज़ी उनका मान कम होने से बहुत करके जाती रही।

७. कथा-पुराण से उसे बड़ी शिक्षा मिलती थी, परन्तु व्यास को दक्षिणा देने के लिए अब उसके पास कुछ नहीं है।

८. मन्दिरो और शिवालयो की दशा अश्रद्धा के कारण खराब है। आजकल के सुधारक सम्प्रदायों ने जो धार्मिक खर्च घटा दिया है, केवल इसी कारण वह बिना उन धार्मिक सम्प्रदायो में सम्मिलित हुए, उनकी किफायती रीति बर्तने लगा है। धार्मिक बातो मे उसपर किसी का दबाव नहीं है। सामाजिक बातो मे समाज के दबाव के कारण ही वह काम-काज मे बहुत खर्च करने को लाचार हो जाता है।

९. गॉव मे अब पुरोहित का होना जरूरी नहीं रह गया है।

१० धार्मिक मेलो और पूजाओं मे दिन-पर-दिन इकट्ठे होने वालो की गिनती घटती जाती है।

११. मेलों मे जाकर वह केवल धार्मिक काम नहीं करता था। वह मनबहलाव भी करता था और पशु और अपने खेती के सामान आदि भी खरीदता था। पर आज पैसे बिना उसका मेला फीका है।

१२. वह मुकदमाबाजी मे फॅसकर धूर्त, झूठा, दग़ाबाज़ और बेईमान हो गया।

१३. उसे अपने स्वार्थ के लिए आज हत्या करने आग लगाने ज़हर देने आदि पापो से हिचक नही है। वह भूख के मारे खूँखार

हो गया है। किसी का दिल दुखाना उसके निकट कोई पाप नहीं रह गया है। देखने में वह अहिंसक अब भी है, परन्तु उसका कारण प्रेमभाव नहीं है। उसका कारण है उसकी अत्यन्त कमज़ोरी।

१४. किसान का अन्तरात्मा अभीतक जीता नहीं गया है। वह अब तक उसे बुरे कामों से रोकता है, परन्तु वह अन्तरात्मा का शब्द न सुनने के लिए अपने को तमाखू, भाँग, गाँजा, अफीम, ताड़ी, शराब आदि नशो से बेहोश कर लेता है, और तब दुराचार मे लगता है।

१५. वह व्यभिचारी हो गया है, और स्त्रियो का उसकी निगाहो मे पहले का सा सम्मान नहीं रह गया है।

१६. स्त्रियाँ बेचारी उसकी पूरी अवस्था नहीं समझतीं, और कुछ दरिद्रता और कुछ अशिक्षा के कारण उसकी पूरी सहायता नहीं कर सकतीं। आये दिन घर मे झगड़े होते रहते है, और उनका निरादर होता रहता है।

आजकल नास्तिकता के ज़माने मे धर्म के ह्रास की इस गिनती पर अनेक पंडितम्मन्य पाठक मुस्करायेंगे। परन्तु जहाँतक लेखक को मालूम है, रूस को छोड़कर संसार के सभी देशो मे किसान के कल्याण के लिए उसमे धार्मिकता और नैतिकता का भाव आवश्यक समझा जाता है। हम साम्प्रदायिकता के विरोधी है, परन्तु धार्मिकता को राष्ट्रीयता का आवश्यक अंग समझते है।

१०. कला पर प्रभाव

कला तो सब तरह से सुख और समृद्धि पर निर्भर है। जहाँ पेट भर खाने को नहीं मिलता, वहाँ तो कला की चर्चा ही वृथा है।

ऐसा भी कोई न समझे कि कला की जरूरत ही नहीं है। मनबहलाव और व्यायाम—सामाजिक शिष्टाचार, मेले-तमाशे और मनोरंजन की सारी सामग्री कला मे शामिल है। इन सब बातों का आदमी की आयु की कमी-बेशी पर प्रभाव पड़ता है। दरिद्रता के कारण—

१. खेल-कूद का सब तरह से अभाव हो गया है। बड़े तो खेल को भूल ही गये है। भूखे पेट खेल क्या होगे ?

२. बच्चे भी भूखों बिल्लाते है, कबड्डी आदि खेलने को इकट्ठे नही होते।

३. बालजीवन सुखमय नहीं है।

४ बच्चो को खिलौने नहीं मिलते।

५. मेले-तमाशे बहुत कम होते है।

६. पैदल दूर की यात्रा करने का हौसला नही है, क्योंकि खाने को नहीं है, और मार्ग का सुभीता नहीं है।

७. शाम को कथा-वार्ता नहीं होती, क्योंकि लोग न शिक्षित हैं और न अनुभवी।

८. लोगो को जीवन मे रस नहीं रहा, लोग फूल के पेड़ नहीं लगाते, गमले नहीं रखते और घर-द्वार सँवारने का शौक नहीं रहा।

९. स्त्रियो को चौक पूरने और भीत पर चित्र लिखने का शौक नहीं रहा।

१०. तीज-त्योहारो पर गाने-बजाने का शौक घट गया है, दीवाली और फाग मे अब वह पहले की-सी उमग नही है।

११. संसार की वस्तुओ के सौन्दर्य की ओर ध्यान कम है, गाने-बजाने का रिवाज घट गया है।

१२. अपने शरीर को सुन्दर और स्वच्छ रखने की ओर ध्यान नहीं है, और हृष्ट-पुष्ट बनाने का हौसला नहीं है।

१३. जीवन की गाड़ी को घसीटकर मौत की मंजिल तक किसी तरह पहुँचाना ही कर्तव्य मालूम होता है।

वैराग्य मे भी ऐसा निर्वेद हो जाता है कि आदमी सांसारिक जीवन मे कोई रस नहीं पाता और ऊब कर परमात्मा मे चित्त लगा लेता है। परन्तु वह बात दूसरी है। किसान भी अपने जीवन से ऊब गया है, परन्तु इसलिए नही कि उसका चित्त परमात्मा मे लग गया है। उसके निर्वेद का कारण भक्ति नही है, उसका कारण है भूख। जो जीवन की सबसे बड़ी ज़रूरत है—अर्थात् भोजन, वही उसे लाख जतन करने पर भी नहीं मिलता। भारत का किसान आजकल कुराज्य के प्रभाव से नरक-यातना भोग रहा है।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

अच्छे राजा को प्रजा प्यारी होती है, क्योकि प्रजा (प्रकृति) को प्रसन्न रखने से (रञ्जनात्) ही राजा कहलाता है। विदेशी राजा को यहाँ की प्रजा उसी तरह प्यारी है जिस तरह माँस खाने वाले को बकरी। परन्तु विदेशी हुकूमत की नीति उसीके लिए अन्त मे घातक है। मुर्गी से एक सोने का अंडा नित्य लेना लाभकारी है। मारकर सब अंडे एक साथ ले लेना, अथवा अंडे देने की ताकत को नष्ट कर देना, बुद्धिमानी का काम नहीं है। विदेशी हाकिमो मे अंधे स्वार्थ के मुकाबिले दूरदर्शिता अधिक होती तो वे अपनी सारी कोशिश इस बात मे लगा देते कि भारत की ख़रीदारी की ताकत नित्य बढ़ती जाय, और हमारा माल खपता जाय। वे अपने यहाँ

के स्वार्थी सिविलियनो के द्वारा भारत के धन को फिजूलखर्ची मे न लगाते। भूमि-कर बहुत हलका लेते। किसान सुखी रहता, वह विलायत का बहुत अच्छा ग्राहक होता, और इस तरह विलायत के माल तैयार करनेवाले शायद आजकल से अधिक धन खीच ले जाते। शुद्ध और सच्चे व्यापारी की नीति बुरी नहीं है, परन्तु बेईमान और ठग व्यापारियों की नीति अन्त मे उन्ही के लिए घातक होती है। इस घड़ी किसान के सिर पर दरिद्रता का बोझ असह्य होगया है। दम नाको मे आगया है। एक-एक क्षण की देर उनके लिए दूभर है। उनकी खरीदारी की ताकत नष्ट हो जाने से देश का भीतरी व्यापार भी बुरी दशा मे है। दरिद्रता की दशा मे पाप और व्यभिचार का परनाला देहातो से बह-बहकर चारो ओर से शहरो मे आकर सिमटता है, जहाँ बस्ती घनी है और आदमी व्यसनी है। फल यह होता है कि दरिद्र देहातो से घिरे हुए शहर गन्दगी की खान होजाते है।[1] शहर वालों पर प्रत्यक्ष कर कम लगे हुए है, उनको

१. मिस मेयो ने अपनी अमर अपकीर्ति "मदर इण्डिया" मे जो भारत के गदे चित्र खींचे हैं उनकी अत्युक्ति को भी हम सच मानले तो वह विदेशी शासन की घोरतम निन्दा हो जाती है। इसके लिए मिस मेयो के ही देश के खेती के सम्पत्तिशास्त्र के भारी-भारी विद्वान और प्रामाणिक लेखक एक स्वर से यही कहते हैं कि दरिद्रता के कारण सभी तरह के पातक और गन्दगियाँ होती हैं, जो शहरों को भी खराब कर डालती हैं। इसके महाकारण—अर्थात् दरिद्रता—के लिए देश की सरकार ही ज़िम्मेदार होती है। जो पाठक स्वय इस विषय को देखना चाहें वे इन प्रमाणों को स्वय पढ ले—Articles Contributed by

(1) Richard T Ely Research Professor of Economics and Director of the Institute for Research in Land Economics and Public Utilities

दशा इसीलिए कुछ अच्छी है। इसीलिए वे व्यसनो मे सहज ही फँस जाते हैं। साथ ही यह बड़े दुःख की बात है कि किसानों की गाढ़े पसीने की कमाई उन शहरों को सजाने और सब तरह सुखी बनाने में विदेशी सरकार आसानी से ख़र्च कर देती है, जिनसे असल मे किसानों को लाभ नही होता। एक ओर तो करोडो किसान दाने-दाने को तरसते हो, और दूसरी ओर १४ करोड़ रुपये लगाकर बिना आवश्यकता के नई दिल्ली के महल बनते हो, यह हद दर्जे की निठुराई है। शहरो मे पानी के बन्दोबस्त के लिए या बिजली का बन्दोबस्त करने के लिए रुपये पानी की तरह बहा दिये जाते है। किसान का बोझ हलका करने के लिए एक अंगुली भी नहीं उठाई जाती।

हमने ऊपर विस्तार से दरिद्रता से पैदा होनेवाले दोष दिखाये हैं। एक दरिद्रता दूर हो जाय, तो ये सारे दोष दूर हो सकते है। सुधारक लोग हर दोष को दूर करने के लिए अलग-अलग उपाय करते रहते हैं, पर उन्हे सफलता नहीं होती। जगह-जगह पैबन्द लगाने से काम नही चलता। पत्ते-पत्ते पर जल देने से पूरे पेड़ का पोषण नहीं हो सकता। या तो विदेशी सरकार इस दरिद्रता को दूर करे या भारत की प्रजा इस दरिद्रता को पैदा करने वाली सरकार को दूर करे और अपना बन्दोबस्त आप ही करके अपनी पुरानी सुख-समृद्धि को लौटा लावे।

---

(2) O. F Hall, Professor of Sociology, Purdue University.

(3) John A. Ferrell, M D International Health Board, and

(4) C E Allred, Professor of Agricultural Economics, University of Tenessee,

in "Farm Income & Farm Life" Published by the University of Chicago Press, 1927, pages 155-189

A W. Hayes: *Rural Sociology,* Longmans, Green & Co. 1929, Chap XVIII. P P. 430-457

: १२ :

और देशों से भारत की खेती का मुक़ाबिला

१. सुधारकों की भूल

भारत की खेती की दशा अत्यन्त गिरी हुई है इस बात से किसी को भी इनकार नहीं है, परन्तु जो लोग सुधार के उपाय बताते है वे अक्सर जापान और योरप का नमूना पेश करके चाहते है कि हमारा देश भी इन्ही देशो की तरह उन्नति के उपाय करके कम-से-कम समय मे सुखी और समृद्ध हो जाय। वे देखते है कि हमारे संयुक्त-प्रान्त में गेहूँ सीचे हुए खेत मे १२ मन प्रति एकड़ और बिना सीचे हुए मे ८ मन प्रति एकड़ पैदा होता है। वही कनाड़ा मे १३ मन और जर्मनी मे १७ मन होता है। इंग्लिस्तान मे एकड़ पीछे भारत का दूना होता है। परन्तु वे इस मुख्य बात को बिलकुल भूल जाते है कि इनमे से किसी देश मे विदेशी राज नहीं है। किसी देश का धन चूसकर पराये देश मे नहीं चला जाता, अपने देश की सरकार तन, मन, धन से अपने देश के ही हित मे लगी रहती है। जिस दिन सरकार और प्रजा मे हित का विरोध होता है, प्रजा तुरन्त सरकार को बदल देती है। फिर इन देशो मे सुधार के होने मे देर क्यो लगे? इसमे सन्देह नहीं कि खेती की कला मे ससार में किसी समय भारत सबसे आगे था, परन्तु आज विदेशी हुकूमत की बदौलत सबसे पिछड़ गया है। जो मूल कारण उसके पिछड़ जाने का है उसके होते अपनी खोई दशा को पा जाना कैसे सम्भव है? फिर भी इस प्रकरण

मे सुधारकों की शकाओ के समाधान के लिए हम कुछ देशो से मुकाविला करेंगे। खेती के सम्बन्ध मे अमेरिका ससार मे सवसे वढ़ा-चढ़ा समझा जाता है। पहले हम अमेरिका पर विचार करेंगे।

२. अमेरिका की खेती

'अमेरिका' साधारण वोलचाल मे अमेरिका के सयुक्तराज्यो को कहा जाता है। किसी ज़माने मे, जिसको आज तीन सौ वरस के लगभग हुए, इग्लिस्तान मे किसानो पर अत्याचार होने लगे थे, और ईसाइयो के 'भाई सम्प्रदाय' पर उनके भाई ईसाई तरह-तरह के जुल्म ढाने लगे थे। उस समय 'भाई सम्प्रदाय' वाले हज़ारो परिवार पहले-पहल हाल के मालूम किये हुए महाद्वीप अमेरिका मे चले गये और वस गये। जिस प्रदेश मे वसे उसका नाम 'नया इग्लिस्तान' रक्खा। उसके वाद अपना देश छोड़-छोड़ सताये हुए कुटुम्ब अमेरिका मे जाकर वसने लगे। धीरे-धीरे 'नये इग्लिस्तान' की तरह अनेक नये उपनिवेश वन गये, जिनमे अग्रेज़ी वोलनेवालो की सख्या ज्यादा थी। इसीलिए ये सभी उपनिवेश अग्रेजो की जायदाद वन गये और ब्रिटेन उनसे लाभ उठाने लगा। जव धन चूसने की क्रिया अपनी हद को पहुँच गई तव वहाँ स्वदेशी और वहिष्कार का आन्दोलन चला, और अन्त मे स्वतंत्रता का युद्ध हुआ, जिसमे इग्लिस्तान एक तरफ था और वहुत-से सयुक्तप्रदेश वाशिङ्गटन के नेतृत्व मे दूसरी तरफ थे। अन्त मे वाशिङ्गटन विजयी हुआ और सम्वत् १८३३ मे ये सयुक्त राज्य स्वतत्र हो गये। इस तरह इनको स्वतंत्र हुए डेढ़ सौ वरस हो गये। मोटे तौर से यो समझना चाहिए कि उन्हे स्वतत्र हुए जितना समय बीता, हमे परतत्र

हुए भी उतना ही समय बीता है। साथ ही मशीनो की उन्नति का आरम्भ हुए भी लगभग ७५ बरस बीते हैं, और लगभग ६० बरस पहले अमेरिका की खेती प्रायः उतनी ही उपजाऊ थी जितनी आज भारतवर्ष की खेती है। स्वतत्र अमेरिका को इस तरह अपनी वर्तमान उन्नत दशा को पहुँचने मे ६० बरस लगे है। भारतवर्ष की बात जाने दीजिए, क्योकि वह पराधीन है। परन्तु इग्लैड, फ्रान्स, जर्मनी, रूस तो अमेरिका से पहले के स्वतंत्र देश हैं, परन्तु उन्होने भी उतनी उन्नति नहीं कर पाई है जितनी अमेरिका ने की है। इसका कारण क्या है? अमेरिका की परिस्थिति पर विचार करने से इस सवाल का जवाब मिल जायगा।

अमेरिका की आबादी प्रायः गोरो की है, वह शहरोवाला देश है। उसका क्षेत्रफल ३०,१३,००० वर्गमील है और आबादी साढ़े ग्यारह करोड है। इस तरह वहाँ मील पीछे आज ३८ आदमी के लगभग बसते है। भारतवर्ष का क्षेत्रफल १३ लाख वर्गमील के लगभग और आबादी पैतीस करोड़ के लगभग है। इस तरह यहाँ वर्गमील पीछे २६९ आदमी बसते है। इस तरह भारतवर्ष की बस्ती लगभग सात गुना ज्यादा घनी है। किसानो की आबादी भारतवर्ष मे तीन-चौथाई है, और जितने लोग खेत के सहारे गुज़र करते है वे सैकड़ा पीछे नब्बे के लगभग है। इस तरह अकेले किसानो की आबादी अगर ली जाय तो मील पीछे हमारे देश मे २३४ किसाने बसते है। यह बात बिलकुल प्रत्यक्ष है कि हमारे यहाँ अमेरिका के मुकाबिले खेती के लिए धरती कम है और खेती के सहारे जीनेवाले अत्यधिक है। सवत् १९७८ की मर्दुमशुमारी मे खेती करनेवालो की गिनती बाईस करोड़ साढ़े नब्बे लाख के लगभग थी। कुछ ज़मीन जिसमे खेती

होती है, लगभग साढ़े बाईस करोड़ एकड़ के हैं। इस तरह भारत में किसानो के सिर पीछे मुश्किल से एक एकड़ की खेती पड़ती है। संवत् १६६६ मे अमेरिका में किसानों के पास सिर पीछे औसत ५५ एकड़ के खेत थे और सिर पीछे २० एकड़ परती। वहाँ किसानों की गिनती धीरे-धीरे घटती जा रही है। सम्वत् १६०७ मे कुल आबादी के ६३ प्रति सैकड़ा किसान थे, संवत् १६७७ मे आबादी २६ प्रतिशत हो गई है। इतनी उन्नति होते हुए भी वहाँ किसानों की संख्या क्यो घटती जाती है? इसलिए कि उद्योग-व्यवसाय के मुक़ाबिले मे खेती की आर्थिक स्थिति बराबर गिरी हुई रहती है। "इसका अर्थ यह है कि इस ससार की वड़ी-वड़ी मण्डियो मे अमेरिका के उद्योग-व्यवसाय को बढ़ा-चढ़ा रखने के लिए वहाँ की खेती का बलिदान करना पड़ेगा।"[१]

भारत मे सिर पीछे जो एक एकड़ की खेती का औसत बैठता है उसमे भी छोटे-छोटे टुकड़े हैं और वे टुकड़े दूर-दूर पर हैं। अमेरिका मे सैकड़ो एकड़ की इकट्ठी खेती एक साथ है जिसकी जुताई-बुवाई के लिए इकट्ठी मशीनो से काम लेने मे किफायत होती है। यह बात तो प्रत्यक्ष है कि रोज़गार का फैलाव जितने अधिक विस्तार का होगा उतनी ही अधिक लागत भी बैठेगी और उसी हिसाब से मुनाफा भी ज्यादा होगा। यूरोप के स्वतन्त्र देशो मे भी जिन देशो की आबादी घनी है और किसान को सिर पीछे खेती करने को कम ज़मीन मिलती है वहाँ के किसानों ने भी अमेरिका के किसानो के मुकाबिले कम उन्नति की है, यद्यपि न तो उनके

१. Farm Income & Farm Life The University of Chicago Press, 1927. p- 106.

यहाँ भारत की तरह औसत जोत इतनी कम है और न पराधीनता है और न उससे उपजी हुई घोर दरिद्रता।

इस बात को भी भूल न जाना चाहिए कि अमेरिका आदि देशो के किसानो को लगान के बढ़ने या खेत से बेदखल हो जाने का उस तरह का डर नहीं है जिस तरह भारत मे है। खेती की सुरक्षा तो भारत के मुकाबिले उन उपनिवेशो मे ही अच्छी है जहाँ गिरमिटवाली गुलामी करने बहुत-से भारतीय गये और सुभीता देखकर वहीं बस गये और खेती करने लगे। विदेशों की-सी सुरक्षा यहाँ भी हो जाय तो पैदावार बढ़ सकती है।

अमेरिका मे पहले आबादी भी थोड़ी थी और मशीनो की चाल भी नहीं चली थी, तब वे अफरीका के हबशियो को गुलाम बनाकर ले गये और काम लेने लगे। विस्तार से खेती का काम बिना कल के सहारे करने के लिए बहुत ज्यादा आदमियों की ज़रूरत होती है, इस लिए वहाँ मशीनो की चाल चल जाने से आदमियो की ज़रूरत घटती गई। पिछले साठ बरसो मे से पहले तीस बरसो मे अधिक काम मशीनों के प्रचार ने किया। यह प्रचार और शिक्षा का काम कृषि-विभाग करता रहा। विक्रमी की बीसवी अर्धशताब्दी के बीतते-बीतते अमेरिका वालो का जो जोश ठण्ठा पड़ गया था वह धीरे-धीरे जगने लगा। पिछले तीस बरसों मे यह जागृति ज़ोरो से इसलिए हो गई कि कच्चे माल की दर बहुत ज़ोरो से चढ़ने लगी और लोग खेती की ओर झुकने लगे, जिससे भय हुआ कि अन्न घट जायगा। तब फिर से कृषि महा-विद्यालय और कृषि-विभाग की जाँचवाले दफ्तर खुल गये। आवाज़ उठी कि वैज्ञानिक प्रयोग किसान तक जबरदस्ती पहुँचाये जाने चाहिएँ। खेती के विशेषज्ञ ज़िले के एजेण्ट और खेती के संवादपत्रों

ने इस काम को उठा लिया। रेल की गाड़ियों मे और मोटरों मे सिखानेवाले और कर दिखानेवाले बैठकर गाँव-गाँव का दौरा करने लगे। हर तरह की सरकारी सहायता बड़ी उदारता से मिलने लगी। क्यों न हो, अपने देश की खेती के बढ़ाने की बात जो थी। खेती की योग्यता के बढ़ाने के प्रश्न पर अमेरिका के मनुष्य का जितना दिमाग और जितनी ताकत पिछले १५ वर्षो मे लगाई गई है, इतिहास मे कहीं कभी नहीं लगाई गई थी।[१] पंजाब के गुड़गाँव के डिपुटी-कमिश्नर मिस्टर ब्रेन ने थोड़ी बहुत उसी ढंग पर कोशिश की थी, परन्तु उन्हे सफलता न हो पाई। कौआ चला हंस की चाल, अपनी चाल भी भूल गया। अमेरिका मे जो काम होता है उस पर किसानो का पूरा विश्वास है। यहाँ सरकार मे और किसान मे भेड़िया और भेड़ का सम्बन्ध है। किसानों को सरकारी अफ़सरो का विश्वास नहीं है। जो कुछ ब्रेन साहब कर पाये, वह अफसरी के जोम पर। उनकी नीयत बड़ी अच्छी थी, परन्तु वह सरकारपने का कलङ्क अपने व्यक्तित्व से मिटा न सकते थे। उन्होने ज्योंही पीठ फेरी, उनका सारा प्रभाव मिट गया और सुधार की दशा फिर ज्यों-की-त्यो हो गई। बात यह थी कि उनके अधिकार मे मालगुज़ारी का बोझा घटाना नहीं था। वह बहुत कुछ शोरगुल करके रह गये, इसीलिए अधिक-से अधिक वह भी पैवन्द लगाने का काम ही कर सकते थे, और हम दिखा आये हैं कि जहाँ जड़ ही ख़राब है वहाँ पत्ते-पत्ते की सिंचाई काम नहीं दे सकती। वह चाहते थे कि सरकार की ओर से माली सहायता मिले, मालगुज़ारी कम की जाय, जंगल बढ़ाये जायँ और

१. Farm Income and Farm Life · The University of Chicago Press 1927, P 115.

किसानो का उनपर अधिकार रहे।[१] लाट साहब हेली ने उनकी पुस्तक की भूमिका लिखी, परन्तु व्यवहार मे ब्रेन के दिमाग़ की अवहेलना की।

अमेरिका मे जितने सुभीते हैं, उतने सुभीते जिस देश मे हो जायँ उसी देश की खेती दिन-पर-दिन बढ़ती जा सकती है। अमेरिका के सुभीते सक्षेप से ये है :—

(१) वह स्वाधीन राज्य है और वहाँ खेती से मिला हुआ कर देश के भीतर ही ख़र्च होता है।

(२) खेती पर किसान का सदैव का स्वार्थ है, उसे बेदख़ली का या इज़ाफ़ा लगान का कोई भय नहीं है।

(३) थोड़े-से-थोड़े कर में उसे ज्याद-से-ज्यादा रक्षा मिलती है।

(४) जीवन की जितनी ज़रूरी चीज़ें हैं वे उसके पास क़ाफ़ी से ज्यादा है।

(५) उसके पास रोज़गार का काम लगातार साल भर के लिए है, और वह अपने लिए काफी कमाई करके फ़ुरसत की घड़ियों का सुख भी लेता है।

(६) सारे परिवार के लि मन-बहलाव का उपाय है और मेहनत करने के बाद नित्य उसे मन-बहलाव का सुभीता मिलता है।

(७) खेती के सम्बन्ध की सब तरह की शिक्षा के सुभीते उसे मिलते हैं।

(८) सफ़ाई, मकान और तन्दुरुस्ती की रक्षा के सारे उत्तम उपाय उसे प्राप्त हैं।

१. F. L Brayne. Village uplift in India. Pioneer Press, Allahabad, 1927, PP 64 66, &

(९) बाहर की आमद-रफ़्त पत्र-व्यवहार और व्यापार के सब तरह के सुभीते उसे मिलते हैं।

(१०) जैसे उसका सारा देश स्वराज्य है उसी तरह उसका गाँव या बस्ती उस महास्वराज्य का एक स्वाधीन टुकड़ा है।

(११) उसके केन्द्रीय स्वराज्य से उसकी बस्ती का सम्बन्ध उसकी बस्ती के लिए सर्वथा हितकर है।

हमने जान-बूझकर मशीन के सुभीते और इकट्ठी बड़े रकबे की खेती ये दोनों बातें शामिल नहीं कीं। हमारे देश मे बड़े रकबे मिल नहीं सकते और जो लोग आजकल मशीनो के चमत्कार को देखकर उनपर हजार जान से फिदा हो रहे हैं हम उन्हे यह याद दिलाना चाहते है कि जो मशीन दो सौ आदमियो की जगह केवल एक आदमी को लगाकर काम कर सकती है वह एक सौ निन्यानवे आदमियो को बेकार भी रखती है। ऐसी मशीनो की जरूरत वहाँ पड़ सकती है जहाँ आदमी कम हो और काम ज्यादा हो। हमारे देश मे इसका बिलकुल उलटा है। आज तो हमारे यहाँ आदमी ज्यादा है और उनके लिए काफी मजूरी नहीं है। इसके सिवा मशीनो का काम बड़े पैमानो पर होता है। हमारा देश ऐसी स्थिति मे है कि खेती के काम बड़े पैमाने पर नहीं हो सकता। इस रोज़गार को बड़े पैमाने पर करने से भी भारत की जनता की हानि है। जिस तरह कपड़े का कारोबार बड़े पैमाने पर होने से भारत मे बेकारी का रोग फैल गया, उसी तरह खेती का कारोबार भी बड़े पैमाने पर होने से बेकारी बढ़ती ही जायगी। यदि सम्पत्तिशास्त्र को संसार के कल्याण की दृष्टि से देखे और परस्पर लूटनेवाली राष्ट्रीयता का दुर्भाव हटावें तो हमें यह कहना पड़ेगा कि कलों का प्रयोग वहीं तक कल्याणकारी है

जहाँतक वह अधिक-से-अधिक मनुष्यों को काम और दाम देकर अधिक-से-अधिक अच्छाई और मात्रा में माल तैयार कर सके। हम ऊपर प्रमाण के साथ यह दिखा आये है, कि ऐसे उत्तम सुभीते के रहते भी किसानो की गिनती घटती जाती है और अधिक लोग ससार को लूटनेवाले उद्योग-व्यवसाय की ओर चले जा रहे हैं। मिल की माया से मोहित मनुष्य इस झूठी कल्पना मे उलझे हुए है कि औद्योगिक लूट बराबर जारी रहेगी और लुटनेवाले ससारी जीव जगकर इस लूट का द्वार कभी बन्द न कर सकेगे, परन्तु यह भारी भ्रम बहुत काल तक न रह सकेगा।

फिर भी अमेरिका से हमको जो बातें सीखने लायक है हम जरूर सीख लेगे। हम जितने सुभीते गिना आये है, भारत के लिए हम वे सभी सुभीते चाहते है।

वर्तमान समय मे हम मोटरो पर चलनेवाले किसानो और मजूरो की तरह अपने यहाँ के किसानो और मजूरो को विमानो का भोग-विलास करते देखने की स्पर्धा नहीं रखते। "भोजन सादा हो परन्तु भरपेट मिले, और पशुओ और अतिथियो तक के खिलाने के लिए बच जाय। भरसक खेतो की ही उपज हो, मोटा चाहे कितना ही हो और भाँति-भाँति का चाहे न भी मिल सके। खद्दर सस्ता हो जिससे शरीर की रक्षा हो सके और सर्दी से बचाव हो, चाहे महीन मुलायम और सुन्दर न हो परन्तु जरूरत से किसी तरह कम न हो। छाया के लिए मकानियत काफी हो, चाहे उसमे सजावट और सुघराई न हो तो भी सफाई पूरी रह सके। बहुत थोड़े से खर्च मे शिक्षा मिले, पुस्तकें मिलें और सब तरह के मनबहलाव का सामान हो जाय। सामाजिक काम भी विना बाधा के हो सके। जोखिमो का बीमा भी

होता रहे और धरती पर के जीवन के लिए और भी कुछ थोड़ी-बहुत बे-ज़रूरी बातें भी सुलभ हों। संसार के अधिकांश किसानो को इससे ज्यादा सुभीते नहीं हैं। अधिक लोगो को तो असल मे इनसे बहुत कम है। यह एक बहुत दिनो से पक्की बात है कि पीढ़ियाँ-पर-पीढ़ियाँ गुज़रती गई है, और जीवन के इन परिमाणो से सन्तुष्ट रहकर वे केवल किसान ही नहीं बने रहे बल्कि जितना हमे चाहिए था उतने से अधिक उपजाते भी रहे। इससे बढ़कर इस बात की कोई गवाही हो नहीं सकती कि जीवन के इससे अधिक ऊँचे परिमाणों की असल मे ज़रूरत न थी, या यों कहना चाहिए कि खेती की परिस्थिति मे इससे ऊँचे परिमाण की रक्षा नहीं की जा सकती थी।"[१] हम उस सादगी को ज्यादा पसन्द करते हैं जिसमे कि ईमानदारी से रहकर किसान अपने आत्मिक जीवन की पूरी ऊँचाई तक उभर सके। वह विज्ञापनबाज़ी के फन्दो मे न फँसे, सूचीपत्रों से अपने को न ठगावे, ठगो की तस्वीरो और मोहिनी बातो पर लुभा न जाय। इश्तिहारी रोजगारो का शिकार न बने, और विलासिता मे न फँसे। अमेरिका के किसानो के ये थोड़े से दोष है जिनसे बचना होगा। दलाली, मुकदमे-बाजी, जुआ, चोरी, नशा, आलस्य, गुण्डापन, व्यभिचार आदि से, जो हमारे किसानो मे दिन-पर-दिन बढ़ते चले जा रहे है, उसे बचना होगा।

३. डेनमार्क की खेती

ससार मे अमेरिका की खेती सबसे बढ़ी-चढ़ी है, परन्तु जैसा

१ Alexander E. Cance, Professor of Agricultural Economics, Massachusetts Agricultural College in "Farm Income and Farm Life," The University of Chicago Press, New York, 1927. P. 78.

हम देख आये है यह उन्नति हाल की ही है। अमेरिका ने अपने कृषि-विभाग की जानकारी बढ़ाने के लिए कृषि-विज्ञान के बड़े-बड़े विद्वानो को यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों मे पर्यटन कराया। यूरोप मे खेती के व्यवसाय मे अमेरिका वालो ने डेनमार्क को सबसे अधिक बढ़ा-चढ़ा पाया, और अनेक बाते इस छोटे से देश से सीखी। यो कहना भी अनुचित न होगा कि जब हम डेनमार्क की चर्चा करते है तो असल मे उस देश की चर्चा करते है जो अमेरिका के लिए भी आदर्श है। इस तरह समझना चाहिए कि ससार मे खेती की उन्नति के लिए डेनमार्क ही सबसे उत्तम आदर्श है। यूरोप के 'लीग ऑफ नेशन्स' (राष्ट्र सघ) की ओर से (दी रूरल हाईजीन इण्टर चेञ्ज) कृषि-स्वास्थ्य—परस्पर विनिमय विभाग ने स्वास्थ्य-सगठन पर कई उपयोगी पुस्तिकायें निकलवाई है। डेनी सरकार के खेती के विभाग के मत्री श्री एस० सोरन्सेन ने डेनी खेती पर एक बड़ी अच्छी पुस्तिका लिखी है। उसकी भूमिका मे डाक्टर बूद्रो ने लिखा है, कि जहाँ की आर्थिक दशा बहुत अच्छी और पक्की नीव पर जमी हुई नहीं है वहाँ तन्दुरुस्ती की रक्षा के लिए उपाय नहीं किये जा सकते। तात्पर्य यह है कि जिन राष्ट्रो को स्वास्थ्य-रक्षा पूरी तौर पर मजूर हो वे अपनी आर्थिक दशा सुधारें, और डेनमार्क की तरह खेती और किसानो की उन्नति करें। स्वास्थ्य-विभाग ने इसीलिए कृषि-विभाग सम्बन्धी पुस्तिका छपवाई है। इस प्रसंग मे हम यह कहे बिना नही रह सकते कि पिछले पृष्ठो मे हमने जो दरिद्रता का सम्बन्ध रोगो और मौतो की बढ़ी हुई सख्या से दिखाया है वह ससार मे निर्विवाद बात मानी जाती है।

परन्तु डेनमार्क खेती मे जितना ही बढ़ा-चढ़ा हुआ है, उतना ही

विस्तार मे छोटा है। यह समुद्र-तट पर वसा हुआ केवल १६,५३६ वर्गमील का क्षेत्रफल रखता है। उसकी आवादी ३४,६७,००० प्राणियो की है। इस देश से क्षेत्रफल के हिसाब से भारत का अवध प्रान्त ड्योढ़ा वड़ा है, और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त वरावर है। भारत मे इससे छोटे प्रान्त केवल दिल्ली और अजमेर के है। आवादी मे सीमा-प्रान्त का ड्योढ़ा है, और सिन्ध प्रान्त से कुछ कम है। अमेरिका के मुकावले मे यहाँ की आवादी ज्यादा घनी है। ये अङ्क हमने सवत् १६८५ के दिये है। डेनमार्क मे देहातो की आवादी सैकड़ा पीछे ५७ है। इसमे से सभी खेती नहीं करते। खेती के सम्वन्ध के सारे काम करने वालों को गिनें तो किसानो की आवादी सैकड़ा पीछे ३३ ही ठहरती है। इनमे से खेत के मालिको के क़ब्जे मे १,७७,००० खेत हैं। पट्टे पर २,२०७ हैं। लगान पर ८, ५५१ है। इस तरह कुल खेती मे ६४ प्रति सैकडा लोगों की अपनी मिल्कियत है, वाकी ६ प्रति सैकड़ा पट्टे या लगान पर हैं। छोटे-से-छोटे खेत आठ एकड़ तक के है, परन्तु सवसे वड़ी सख्या २५ एकड़वाले खेतो की है। उनके वाद ७५ एकड़वालों की सख्या लगभग उतनी ही है जितनी कि आठ एकड़वालों की है, इस तरह असल मे वहाँ थोक खेती ज्यादा है। किसानों की आवादी के हिसाव से जितने क्षेत्रफल पर किसान अधिकार रखता है वह हमारे यहाँ से कहीं ज्यादा है। सत्तरह-सत्तरह एकड़ की जोते छोटी जोतों का औसत क्षेत्रफल समझी जाती है।[1] हमारे यहाँ जिनके पास १७ एकड़ खेत हैं वे १७ भिन्न-भिन्न

१. 'Small Holdings in Denmark' by L. Th. Arnskov, Danish Foreign office Journal, 1924 (Dyioa and Jeppesen). Danish Agriculture (Statistics), The Agricultural Council of Denmark vestre Boulevard 4-Copenhagen V.

जगहो मे बटे हुए भी है। थोक के थोक इकट्ठे नही है। सवत् १६७७-७८ और ७६ मे वहाॅ एकड़ पीछे लगभग १२०३) रुपये दाम देने पड़ते थे। जिन लोगो के पास छोटी-छोटी जोत थी उन्हे बढ़ाने के लिए, और जिनके पास पट्टे थे या जो रय्यत की तरह लगान पर खेत लेकर खेती करते थे, उन्हे खेतो को खरीद लेने मे वहाँ की सरकार ने बहुत कम व्याज पर और उन खेतों की ही जमानत पर उधार रुपये दिये, और किसानो को खेतो का मालिक बनाया। यह उधार के रुपये भी वसूल करने का ढग ऐसा अच्छा रक्खा कि छोटी-छोटी किस्तो मे साल साल पर किसान लोग अदा करे, जिसमे कई बरसो मे वह सरकारी उधार भी चुकता हो जाय और किसानों की मिल्कियत भी पक्की पोढ़ी हो जाय। डेनी सरकार ने किसानो के साथ केवल इतनी रिआयत ही न की बल्कि उनका सगठन कराने मे, सहयोग समितियो के बनाने मे उनकी उपज को चोखा बनाने मे, और संसार की मण्डियो मे, उनके माल के अच्छे-से-अच्छे दाम खड़े कराने मे पूरी मदद दी और कोई बात उठा न रक्खी।

बाहर के लोग यह देखकर आश्चर्य करते है कि डेनो के देश की समाई इतनी कम होने पर भी ससार की मण्डियो मे एक-तिहाई मक्खन, एक-चौथाई सुअर का मांस, और दसवाॅ भाग अडे वह कहाँ से लाकर बेचता है। श्री सोरन्सेन इस रहस्य को थोड़े ही मे खोल देते हैं। डेढ़ सौ बरस के सगठन और घनी खेती का यह फल है, और इतना कह देने मे ज़रा भी गलती का डर नहीं है कि डेनी किसान अपने काम मे बड़े कुशल और शिक्षित है और उनका सामाजिक और मानसिक परिणाम बहुत ऊँचा है।

हमारा भी तो इन्ही डेढ़सौ बरसो का रोना है। जो देश स्वाधीन

थे या स्वाधीन हो गये, जैसे डेनमार्क और अमेरिका, उन्होने उसी समय अपना सगठन और उत्थान आरम्भ किया; उसी समय भारत के पाँवो मे बेड़ियाँ पड़ गई, और उसके शरीर मे खून चूसकर बाहर जानेवाली जोंकें लग गई। डेनमार्क की उन्नति की बुनियाद भी बहुत पुरानी है। पुराने डेन्मार्क मे उसी समय उसी तरह का ग्राम-संगठन था जैसा कि भारत मे। हरेक गाँव एक प्रकार की सहयोगी-समिति थी जिसमे गाँव का हर आदमी शामिल था। वे अपना कानून खुद बनाते थे। उनकी कानून की किताब मे खेती, पशुपालन आदि के नियम लिखे रहते थे। गाँववाले सालभर के लिए या तीन साल के लिए अपना मुखिया चुन लेते थे। गाँव मे हरी घास पर यही मुखिया सभा किया करता था। हर मेम्बर के बैठने के लिए उसकी जायदाद की हैसियत के अनुसार मच हुआ करता था। मुखिया काम शुरू करता था और फिर ऐसी बातें तय कर ली जाती थीं कि जोताई-बोवाई किस-किस दिन की जायगी, घास कब कटेगी, फसल कब काटी जायगी, कौन-कौन से दरख्त कटेंगे और कब कटेंगे, ढोरो का क्या बन्दोबस्त होगा, ग्वाले को क्या दिया जायगा। इस तरह के छोटे छोटे प्रश्नो से लेकर गाँव के सब तरह के बन्दोबस्त इसी पचायत मे होते थे। दीवानी और फौजदारी दोनो तरह के मुक-दमे फैसल होते थे। जुर्माने होते थे और लिये जाते थे। ये पचायतें बड़े अदब कायदे से होती थी। कड़े अनुशासन से काम लिया जाता था। पचायती पाठशाला आदि पंचायत की चीजें थी। किसी के लडका हो या न हो, पर हर गाँववाला पढ़ानेवाले के भोजन के खर्च मे हिस्सा देता था। इसके सिवा हर पढ़नेवाला लडका फीस भी देता था, जिससे मास्टर की तनख्वाह निकलती थी। बहुत विस्तार करना

व्यर्थ है, इतना कह देना काफी होगा कि हरेक गाँव अपने स्थानीय स्वराज्य का उपभोग करता था। परन्तु इसके साथ-साथ एक दोष यह था कि जमीदारी और काश्तकारी का भी सम्बन्ध था और मजूरो और आसामियो के साथ गुलामो का-सा बर्ताव होता था। परन्तु इस प्रथा मे धीरे-धीरे सुधार होने लगा, और पिछले पचास वर्षो मे सुधारो का वेग बहुत बढता गया। जहाँ-जहाँ जमीन रेतीली थी और खेती नही हो सकती थी, वहाँकी जमीनो पर जगल लगा दिये गये। जहाँ-जहाँ हो सका पशुओ का चारा उपजाया जाने लगा। घासो के उगने की जगह आलू, गाजर, शलजम आदि कन्दमूल उपजाये जाने लगे। बाज़-बाज़ फसले पाँचवे, बाज़ छठवें और बाज़ सातवे साल अच्छी होती थी। अदला-बदली करके इस तरह पर वहाँ खेती होने लगी कि जिस साल जिस चीज़ की उपज सबसे ज्यादा होनेवाली थी उस साल वही चीज़ बोई जाती थी। यह तो खेती की बात हुई, जिसमे कि उन्होने ऐसी तरक्की की कि बढ़ते-बढ़ते एकड पीछे सोलह मन गेहूँ उपजाने लगे। डेनो का गाहक पहले इंगलिस्तान था, परन्तु मण्डी मे और मुल्को की चढ़ा-ऊपरी से डेनो की अनाज की खपत कम होगई। उस समय डेन हताश नही हुए, वे गोवश को पहले ही से सुधार रहे थे। जब अनाज की बिक्री कम हुई तो उन्होंने मक्खन का रोज़गार करना शुरू किया, गायें पाली और बछड़े भी पालने लगे। भारत मे बैल बडे काम के जानवर है, खेती उन्ही के बल पर होती है; परन्तु डेनमार्क मे ढुलाई और जुताई आदि का काम घोडो से लेते हैं, इसलिए गोमांस-भक्षी अंग्रेज़ ग्राहको को वे बैलो का माँस देने लगे। माँस, चर्बी आदि के लिए वे पहले से सुअर भी पालते थे, और

अंडो के लिए मुर्ग, बत्तक आदि भी रखते थे। इस तरह उन्होने अनाज की बिक्री घटने पर गोमांस, शूकर-मांस, चर्बी, चमड़ा, मक्खन, अडे इत्यादि की बिक्री बढ़ाई। इस बात मे डेनी सरकार से उन्हे बहुत बड़ी मदद मिली। आज सिवाय अनाज के इन सब चीजो की बिक्री डेनमार्क की बहुत ज्यादा है। और ये सब चीजें खेती की उपज समझी जाती है। भारतवर्ष शायद ऐसी खूँखार तिजारत के लिए ठीक न होगा, परन्तु हमारे देश की शिक्षा के लिए वहाँ की सबसे बड़ी चीजें दो है —एक तो सहयोग-समितियाँ और दूसरे खेती की शिक्षा देनेवाले मदरसे।

सहयोग-समितियो की चर्चा भारतवर्ष में बहुत चल रही है। उनके कानून भी बने हुए है। देश मे गवर्मेण्ट की ओर से उसका आन्दोलन चल रहा है। परन्तु हमारे देश मे और डेनमार्क मे यह भारी अन्तर है कि डेनो की सहयोग-समितियाँ गाँव की पचायतो से पैदा हुई हैं, और वहाँ की सरकार ने उन्हे अपना लिया है। यहाँ की सरकार ने पहले गाँव की पचायतों को नष्ट कर डाला, जिसको बहुत जल्दी सौ बरस के लगभग हो जायँगे, और कोई छब्बीस बरस हुए कि विदेशी सरकार ने सहयोग समितियो की बुनियाद डाली और उन्हे अपने जोर से फैलाया, परन्तु उनमे इतने बधेज रक्खे कि हमारे गरीब किसान उनको अपना न पाये। वहाँ सहयोग समितियों की बुनियाद नीचे से पड़ी थी, और यहाँ शिमले की ऊँचाई से। यह साफ है कि कौनसी बुनियाद मजबूत हो सकती है। वहाँ के किसानों ने सब तरह की समितियाँ बनाई है, जिनका आरम्भ पहले पहल 'मक्खन निकालनेवाली समिति' से हुआ। संवत १९३९ मे कुछ दरिद्र किसानों ने मिलकर मक्खन निकालने के लिए पहले

पहल समिति बनाई। वहाँ आजकल ऐसी चौदह सौ समितियाँ है। इनके सिवा खरीदने की, बेचने की, लेनदेन की, सब तरह की सहयोग-समितियाँ बन गई है। इन पर सरकारी नियन्त्रण नहीं है, परन्तु सरकार मे इनकी साख मानी जाती है, इनको उधार रुपये दिये जाते हैं, और इनके विरुद्ध सरकारी अदालतों मे मुकदमे नहीं चलाये जा सकते।

डेनमार्क की सारी उन्नति की पूँजी वहाँ की 'लोक-पाठशालाओं' मे है। पादरी ग्रुण्ट फिग ने ६० बरस से ऊपर हुए इन पाठशालाओं का आरम्भ किया था। उसने एक बार इस प्रकार अपनी इच्छा प्रकट की थी—"यह मेरी परम अभिलाषा है कि डेनों के लिए ऐसी पाठशालाये खुलें जिनमे देश के युवक पढ़ सकें। वहाँ वे मानव-स्वभाव और मानव-जीवन से अच्छा परिचय पा सकें, और विशेष कर अपने को खूब समझ सकें। वहाँ वे गाँवों मे रहनेवालों के कर्तव्य और सम्बन्ध अच्छी तरह समझ सकें, और देश की जरूरतें भी अच्छी तरह जानें। मातृ-भाषा की गोद मे उनकी देशभक्ति पलेगी, और डेनी गीतों मे उनके राष्ट्र का इतिहास पुष्ट होगा। हमारे लोगों को सुखी बनाने के लिए ऐसे मदरसे अमृत के कुण्ड होंगे।"[1]

सचमुच इसी अमृत के कुंड से डेनी किसानों का नया जीवन निकला। वहाँ ऐसे साठ मदरसे है, जिनमे लगभग सात हजार शिक्षार्थी है। ये १८ बरस से लेकर २५ बरस तक के युवक और युवतियाँ हैं। पाँच महीने मे युवकों की पढ़ाई समाप्त होती है, और तीन महीनों मे युवतियों की। ये लोग प्रायः थोड़े लिखे-पढे मदरसों

१. Quoted from S. Sorensen Danish Agriculture, League of Nations, 1929 P. 26-27

से भर्ती होते है, और खेती की ऊँची-से-ऊँची विद्या इस थोडे काल में पढ़कर पण्डित हो जाते है।

सक्षेप से डेनमार्क मे भी हम वही सब सुभीते पाते हैं जिन ११ सुभीतो की चर्चा हम अमेरिका के सम्बन्ध मे कर आये है। यहाँ दोहराने की जरूरत नही है। अमेरिका मे फर्क इतना ही है कि अमेरिका की अनाज और फल की खेती बढ़ी हुई है और डेनी लोग पशु की खेती मे बढ़े-चढे है। अमेरिका मे खेतो का विस्तार सिर पीछे डेनमार्क की अपेक्षा बहुत ज्यादा है। इन दोनों देशो मे बैलो से काम नहीं लिया जाता, बल्कि लोग उन्हे खा जाते हैं. हाँ, वे गऊ के पालने मे बडे होशियार है और दूध मक्खन की भारी तिजारत करते है।

संसार के सबसे बडे खेती करनेवाले देशो मे जो बाते हम देखते है उनमे सीखने की बाते लोहे की मशीनें नहीं है बल्कि मनुष्यो के सगठन और प्रबन्ध है, जो हम भी कर सकते है अगर हमारे हाथ-पाँव खुले हो।

'लोक साहित्य माला'

'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना इस उद्देश्य को लेकर हुई थी कि जन साधारण को ऊँचा उठानेवाला साहित्य सस्ते-से-सस्ते मूल्य में सुलभ कर दिया जाय। हम नहीं कह सकते कि 'मण्डल' इस उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुआ है, लेकिन इतना निश्चित है कि उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति की ओर नेक नीयती से बढते रहने की कोशिश की है और हिन्दी मे राष्ट्रनिर्माणकारी और जन-साधारण के लिए उपयोगी साहित्य देने मे उसने अपना खास स्थान बना लिया है। लेकिन हमको अपने इतने से कार्य से सन्तोष नहीं है। अभी तक 'मण्डल' से, कुछ अपवादों को छोडकर, ऐसा साहित्य नही निकला जो बिलकुल जन-साधारण का साहित्य—लोक साहित्य कहा जासके। अभी तक आमतौर पर मध्यम श्रेणी के लोगों को सामने रखकर 'मण्डल' का प्रकाशन कार्य होता रहा है लेकिन अब हमको अनुभव हो रहा है कि हमे अपनी गति और दिशा बदलनी चाहिए और जनता का और जनता के लिए साहित्य प्रकाशित करने का ख़ास-तौर से आयोजन करना चाहिए।

इसी उपरोक्त विचार को सामने रखकर 'मण्डल' से हम 'लोक साहित्य माला' नाम की एक पुस्तक माला प्रकाशित करने की तजवीज कर रहे हैं। इस माला मे डबल क्राउन सोलह पेजी आकार की दो-ढाई सौ पृष्ठो की लगभग दो सौ पुस्तकें देने का हमारा विचार है। पुस्तकें साधारणतः जन-साधारण की समझ मे आने लायक सरल भाषा में, अपने विषयों के सुयोग्य विद्वानो द्वारा लिखाई जायँगी। पुस्तकों के विषयो मे जनसाधारण से सम्बन्ध रखनेवाले तमाम विषयो—जैसे खेती, बाग़वानी,

ग्रामोद्योग, पशुपालन, सफाई, सामाजिक बुराइयाँ, विज्ञान, साहित्य, अर्थशास्त्र, राजनैतिक, सामान्य जानकारी देशभक्ति की कहानियाँ, महाभारत रामायण की कहानियाँ, चरित्रबल बढ़ानेवाली कहानियाँ आदि का समावेश होगा। सक्षेप मे हमारा इरादा यह है कि हम लगभग दो सौ पुस्तको की एक ऐसी छोटी-सी लाइब्रेरी बना दे, जो साधारण पढे-लिखे लोगो के अन्दर वर्तमान काल के सारे विषयों को तथा उनको ऊँचा उठानेवाले युग परिवर्तनकारी विचारों को सरल-से सरल भाषा में रख दे और उसके बाद उन्हे फिर किसी विषय की खोज मे—उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए—कहीं बाहर न जाना पड़े।

ऊपर लिखे अनुसार लगभग दो-ढाई सौ पृष्ठों की पुस्तक माला की पुस्तको का दाम हम सस्ते-से-सस्ता रखना चाहते हैं। आमतौर पर हिन्दी मे उतने पृष्ठो की पुस्तक का मूल्य १) या १।) रु० रखा जाता है लेकिन हम इस माला के स्थायी ग्राहकों के लिए छः आना और फुटकर ग्राहकों के लिए आठ आना रखना चाहते हैं। काग़ज छपाई आदि बहुत बढिया होगी।

निम्नलिखित पुस्तकें इस माला में प्रकाशित हो चुकी हैं और कुछ तैयार हो रही हैं।

१ हमारे गाँवों की कहानी [स्व० रामदास गौड़]
२ महाभारत के पात्र—१ [आचार्य नानाभाई]
३ संतवाणी [वियोगी हरि]
४ अंग्रेज़ी राज में हमारी दशा [डॉ० अहमद]
५. लोक-जीवन [काका कालेलकर]
६ राजनीति प्रवेशिका [हेरल्ड लास्की]
७ हमारे अधिकार और कर्तव्य [कृष्णचन्द्र विद्यालंकार]
८ सुगम चिकित्सा [चतुरसेन वैद्य]
९ महाभारत के पात्र—२ [नानाभाई]

गांधी साहित्य-माला

'मण्डल' का यह सौभाग्य रहा है कि महात्माजी की पुस्तकों को हिन्दी मे प्रकाशित करने की स्वीकृति और सुविधा महात्माजी की ओर से उसे मिली है। और हिन्दी में गाधीजी की पुस्तकें मण्डल ने ही ज्यादा सख्या मे निकाली भी हैं। 'मण्डल' का सर्वप्रथम प्रकाशन महात्माजी का लिखा 'दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह' था। उसके बाद उनकी 'आत्मकथा', 'अनासक्तियोग-गीताबोध', 'अनीति की राह पर' और 'हमारा कलक' आदि हमने प्रकाशित किये। लेकिन फिर भी अबतक हम एक बात नहीं कर पाये। बहुत दिनों से हमारी इच्छा थी कि महात्माजी के सारे लेखों और भाषणों का विषय-वार सुसपादित सस्करण निकाला जाय। अब पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस वर्ष हम इश काम को प्रधान रूप से हाथ मे ले रहे हैं और महात्माजी के चुने हुए खास-खास लेखो को १५-२० भागों में उपरोक्त माला के रूप में निकाल रहे हैं। 'स्वदेशी और ग्रामोद्योग' इस माला की पहली पुस्तक है। इस माला के प्रत्येक भाग की पृष्ठ सख्या २०० और दाम ||) होगा।

नवजीवन माला

मण्डल के प्रमुख सदस्य श्री महावीरप्रसाद पोद्दार सन् १९३०-३१ मे कलकत्ता मे 'शुद्ध खादी भण्डार' सचालन का काम करते थे। वहाँ से उन्होने 'नवजीवन माला' नाम की एक पुस्तकमाला निकाली थी। उसका उद्देश्य, करोडों, हिन्दी भाषी ग़रीब लोगों मे महात्मा गाधी और ससार के दूसरे सत्पुरुषो के नवजीवनदायी विचारों को सस्ते-से

सस्ते मूल्य में फैलाना और उनको भारत की आजादी के महायज्ञ के लिए तैयार करना था। इस माला में कलकत्ते से लग-भग ३० छोटी छोटी पुस्तकें निकली थीं। उसका बड़ा प्रचार हुआ और महात्मा गांधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू और श्री जमनालाल बजाज आदि ने इन पुस्तकों की बहुत प्रशंसा की। बाद में श्री पोद्दारजी दूसरे कामों में लग गये और माला का प्रकाशन बन्द होगया। अब श्री पोद्दारजी ने इस माला का प्रकाशन 'सस्ता साहित्य मण्डल' के सिपुर्द कर दिया है और यह माला, पुरानी पुस्तकों के क्रम में कुछ हेर-फेर के साथ, मण्डल से नियमित रूप में प्रकाशित होती रहेगी। इसकी पुरानी पुस्तकें जो प्राप्य होंगी वे भी मण्डल से मिल सकेंगी।

'मण्डल' से इस माला में निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं, उनका क्रम तथा परिचय इस प्रकार है:—

१ गीताबोध	(गांधीजी)	-)॥।
२ मंगलप्रभात	,,	-)॥
३ अनासक्तियोग (गांधीजी) =) : श्लोकसहित ≡) सजिल्द ।)		
४ सर्वोदय	(गांधीजी)	-)
५ नवयुवकों से दो बातें	(क्रोपाटकिन)	-)
६ हिन्द स्वराज्य	(गांधीजी)	≡)
७ छूतछात की माया	(आनन्द कौसल्यायन)	-)
८ किसानों का सवाल	(डा० अहमद)	=)
९ ग्राम सेवा	(गांधीजी)	-)
१० खादी गादी की लड़ाई	(विनोबा)	=)

सस्ता साहित्य मण्डल

'सर्वोदय साहित्य माला' की पुस्तकें

आगे होनेवाले प्रकाशन

१. जीवन शोधन—किशोरलाल मशरूवाला
२. समाजवाद : पूँजीवाद—
३. फेसिस्टवाद
४. नया शासन विधान—(फेडरेशन)
५. हमारे गाँव—चौधरी मुखतारसिंह
६. हमारी आज़ादी की लड़ाई (२ भाग)—(हरिभाऊ उपाध्याय)
७. सरल विज्ञान—१ (चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय)
८. सुगम चिकित्सा—(चतुरसेन वैद्य)
९. गांधी साहित्य माला—(इसमे गाधीजी के चुने हुए लेखो का सग्रह होगा—इस माला मे २० पुस्तके निकलेगी। प्रत्येक का दाम ||) होगा। पृष्ठ स० २००--२५०)
१०. टाल्स्टाय ग्रन्थावलि—(टाल्स्टाय के चुने हुए। निबन्धो, लेखों और कहानियो का सग्रह। यह १५ भागो मे होगा। प्रत्येक का मूल्य ||), पृष्ठ सख्या २००--२५०)
११. बाल साहित्य माला—(बालोपयोगी पुस्तकें)
१२. लोक साहित्य माला—(इसमे भिन्न-भिन्न विषयो पर २०० पुस्तके निकलेगी। मूल्य प्रत्येक का ||) होगा और पृष्ठ सख्या २००--२५० होगी। इसकी ६ पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं।)
१३. नवराष्ट्र माला—इसमें संसार के प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र निर्माताओं और राष्ट्रों का परिचय है। इस माला की पुस्तकें २००-२५० पृष्ठो की और सचित्र होगी। मूल्य |||)
१४. नवजीवनमाला—छोटी-छोटी नवजीवनदायी पुस्तकें।

आगे होनेवाले प्रकाशन

१ जीवन शोधन—किशोरलाल मशरूवाला

२ समाजवाद : पूँजीवाद—

३ फेसिस्टवाद

४. नया शासन विधान—(फेडरेशन)

५ हमारे गॉव—चौधरी मुखतारसिंह

६. हमारी आज़ादी की लड़ाई (२ भाग)—(हरिभाऊ उपाध्याय)

७ सरल विज्ञान—१ (चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय)

८. सुगम चिकित्सा—(चतुरसेन वैद्य)

९. गाधी साहित्य माला—(इसमे गाधीजी के चुने हुए लेखो का सग्रह होगा—इस माला में २० पुस्तके निकलेगी। प्रत्येक का दाम ||) होगा। पृष्ठ स० २००--२५०)

१० टाल्स्टाय ग्रन्थावलि—(टाल्स्टाय के चुने हुए। निबन्धो, लेखों और कहानियो का सग्रह। यह १५ भागो में होगा। प्रत्येक का मूल्य ||), पृष्ठ सख्या २००--२५०)

११. बाल साहित्य माला—(बालोपयोगी पुस्तकें)

१२. लोक साहित्य माला—(इसमे भिन्न-भिन्न विषयो पर २०० पुस्तकें निकलेगी। मूल्य प्रत्येक का ||) होगा और पृष्ठ सख्या २००--२५० होगी। इसकी ६ पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं।)

१३. नवराष्ट्र माला—इसमे संसार के प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र निर्माताओ और राष्ट्रो का परिचय है। इस माला की पुस्तकें २००-२५० पृष्ठो की और सचित्र होगी। मूल्य |||)

१४. नवजीवनमाला—छोटी-छोटी नवजीवनदायी पुस्तकें।